Nav Jyoti, Vol. 8, No. 17, July-Dec. 2020 ISSN : 2249-7331

शिक्षा और संस्कृति

डॉ. अंशू त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर
का. सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या

सारांश

शिक्षा एक आजीवन चलाने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लोग कार्य और विचार की नई पद्धतियाँ सीखते रहते हैं। उससे व्यवहार में ऐसे बदलाव लाने को बढ़ावा मिलता है, जिनसे मनुष्य की स्थिति में सुधार आये। छात्रों में एक सामाजिक भाव की संस्कृति पनपने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय और अन्य संस्थायें विचारपूर्वक अपनी सांस्कृतिक विरासत प्रसारित करती हैं। संस्कृति शिक्षा का अभिन्न भाग है और उसका स्कूल के प्रशासन से गहरा संबंध है। संस्कृति किसी समाज की पहचान होती है। यह उसके रहन–सहन एवं खान–पान की विधियाँ, व्यवहार प्रतिमानों, रीति–रिवाज, कला–कौशल, संगीत–नृत्य, भाषा–साहित्य, धर्म–दर्शन, आदर्श–विश्वास और मूल्यों के विशिष्ट रूप में जीवित रहती है। तब किसी समाज की शिक्षा पर उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। समाज शिक्षा के ही माध्यम से अपनी संस्कृति को सुरक्षित रख सकता है, उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमित करता है, और उसमें परिवर्तन और विकास करता हैं एक के अभाव में दूसरे के विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती। संस्कृति एवं शिक्षा एक–दूसरे के पूरक हैं दोनों का समन्वय होने पर ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। शिक्षा अपने समीक्षात्मक, चिन्तनात्मक, आलोचनात्मक, तार्किक व बौद्धिक विशिष्टताओं से संस्कृति को सतत् रूप से प्रगतिशील व प्रासंगिक बनाकर उसका रक्षण एवं संवर्द्धन करती है।

शिक्षा के द्वारा ही हम अर्थहीन, महत्वहीन और मूल्यहीन परम्पराओं, रीति–रिवाजों का परित्याग करके नूतन आदर्शों, नवीन परम्पराओं की ओर अग्रसर होते हैं जो अधिक सामयिक, प्रासंगिक, मूल्यवान और उपयोगी होते हैं। शिक्षा और संस्कृति एक–दूसरे के पूरक और अंर्तसंबंधित हैं। जहाँ संस्कृति शिक्षा के विविध उपांगों का परिष्कार और परिमार्जन कर उसे समय–समय सापेक्ष बनाती है वहीं संस्कृति स्वयं भी शिक्षा से नवीन कलेवर प्राप्त करती है।

संकेत शब्द : सांस्कृतिक विरासत, व्यवहार प्रतिमानों, समीक्षात्मक, अंर्तसंबंधित, उपांगों।

संस्कृति एवं शिक्षा मानव–जीवन के दो पक्ष हैं। संस्कृति शोधन करने वाली तथा उत्पादन करने वाली है तो शिक्षा विकास एवं वृद्धि करने वाली है। इसलिये जब तक व्यक्ति का विकास एवं वृद्धि नहीं होगा तब तक वह संस्कृति के अवयवों तथा उनका शोधन करने वाली और उत्पादन करने वाली शक्तियों को प्राप्त नहीं कर सकता है। संस्कृति का ज्ञान शिक्षा से ही होता है। शिक्षा संस्कृति का संवाहक है। शिक्षा और संस्कृति में अटूट संबंध है। इसी कारण शिक्षा का एक उद्देश्य व्यक्ति का सांस्कृतिक विकास करना माना गया है। इस प्रकार संस्कृति एवं शिक्षा एक–दूसरे के पूरक हैं दोनों का समन्वय होने पर ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है।

किसी देश की सामाजिक, भौतिक, नैतिक, बौद्धिक विशिष्टताओं का परिचय संस्कृति से ही होता है। संस्कृति किसी देश की आत्मा है, जिसके माध्यम से किसी देश की आंतरिक मंतव्यों का ज्ञान होता है। मनुष्य अपने देश की संस्कृति से आबद्ध होकर उन क्रिया–कलापों को अंजाम देता है जो उसे सभ्य, सुशिक्षित, नैतिक एवं विद्वान व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करता है। स्पष्ट है कि मनुष्य

की समस्त क्रियाओं, व्यवहारों, उत्पादन, परिष्कार एवं उन्नति का समन्वित रूप ही संस्कृति है। संस्कृति के द्वारा सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के लिये मानव मस्तिष्क में आकर्षण उत्पन्न होता है और उसकी अभिव्यक्ति होती है। इस कार्य में शिक्षा महती भूमिका अदा करती है। वस्तुतः शिक्षा के ही माध्यम से व्यक्ति को संस्कृति के अवयवों का ज्ञान होता है। परिणामतः वह संस्कृति का परिशोधन करने में समर्थ होता है। संस्कृति शिक्षा का प्रतिफल या परिणाम है। प्रत्येक बालक का जन्म दोहरी विरासत के साथ होता है जैविक और सांस्कृतिक। अपनी जैविक विरासत से उसे अपनी शारीरिक विशेषतायें, मानसिक क्षमता और आधारभूत आवश्यकतायें प्राप्त होती है। उसे अपनी सांस्कृतिक विरासत उस समाज से प्राप्त होती है, जिसमें उसका जन्म एवं पालन–पोषण होता है। बालक की शिक्षा में उसकी सांस्कृतिक विरासत का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है जितना कि उसकी जैविकीय विरासत का।

संस्कृति किसी समाज की पहचान होती है। यह उसके रहन–सहन एवं खान–पान की विधियों, व्यवहार प्रतिमानों, रीति–रिवाज, कला–कौशल, संगीत–नृत्य, भाषा–साहित्य, धर्म–दर्शन, आदर्श–विरासत और मूल्यों के विशिष्ट रूप में जीवित रहती है। तब किसी समाज की शिक्षा पर उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। आज किसी भी समाज की शिक्षा उसके धर्म–दर्शन, उसके स्वरूप, उसके शासनतंत्र, उसकी अर्थव्यवस्था, मनोवैज्ञानिक खोजों और वैज्ञानिक आविष्कारों पर निर्भर करती है, इन्हें ही दूसरे शब्दों में शिक्षा के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक आधार कहते हैं। समाजशास्त्रीय आधारों में सबसे अधिक प्रभावशाली तत्व समाज विशेष की संस्कृति होती है।

शिक्षा का समान्य अर्थ है सीखना और सिखाना। किन्तु मूलतः शिक्षा शब्द बहुआयामी है शिक्षा का उद्देश्य है– व्यक्तित्व का समग्र विकास। सम्प्रति शिक्षा को ज्ञान का पर्याय मान लिया गया है जबकि शिक्षा और ज्ञान के रूप में भिन्नता है। वर्तमान में शिक्षा को ज्ञान का माध्यम मानकर औपचारिक शिक्षा को ही शिक्षा का प्रतिमान स्वीकार कर लिया गया है जबकि देश–काल के परिदृश्य में शिक्षा और संस्कृति के सूत्र अर्न्तग्रंथित होतेहै। शिक्षा में सकारात्मकता जरूरी होती है, अन्यथा ऐसे होता है कि बनाने बैठे विनायक और बन गया बंदर। भारतीय परिदृश्य में शिक्षा का परिदृश्य भिन्न है। भारतीय दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य है सर्वांगीण विकास अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का विकास या रूपान्तरण। शिक्षा केवल सूचनाओं का संग्रहण नहीं है और न एक विषय–विशेष, शिल्प, कला या तकनीक का सीमित ज्ञान ही है। शिक्षा निर्माण की सतत् चलने वाली प्रक्रिया है जिसके दो स्थूल बिन्दु हैं– ज्ञान और विज्ञान। शिक्षा बौद्धिक विकास के साथ–साथ अन्तश्चेतना के विकास का भी सशक्त माध्यम है। ऐसी शिक्षा ही जीवन को चरितार्थता की ओर ले जाती है। माना जाता है कि शिक्षा संपूर्ण जीवन व्यवस्था का आधार है। अतः शिक्षा के बिना न व्यवस्था तंत्र का निर्माण संभव है और न ही व्यक्तित्व का विकास। यह सब संस्कृति के अवगाहन से ही संभव है। भारतीय संदर्भ में संस्कृति व्यक्तिनिष्ठ न होकर समाष्टिनिष्ट होती है। संस्कृति की संरचना एक दिन में न होकर शताब्दियों की साधना का सुपरिणाम होता है। अतः संस्कृति वैचारिक, मानसिक व भावनात्मक उपलब्धियों का समुच्चय होती है।

वर्तमान में शिक्षा–व्यवस्था संस्कृति की अपेक्षा सभ्यतानिष्ठ अधिक है। तात्पर्य यह है कि वर्तमान शिक्षा विचार प्रधान, चिन्तन–प्रधान व मूल्य–प्रधान की अपेक्षा ज्ञानार्जन प्रधान है। हमारी शिक्षा में सांस्कृतिक मूल्यों के स्थान पर पश्चिमी सभ्यतामूलक तत्वों को उपादान के रूप में ग्रहण कर लिया गया है। तभी तो शिक्षा व समृद्धि के पाश्चात्य मानदण्डों को आधार मान लिया है जो

संस्कृति विरोधी है। जिनमें नैतिक व मानवीय मूल्यों का विशेष स्थान नही है। यह निर्विवाद है कि विद्यार्थी पर वातावरण का निजी रुचि का और वंशगत भावनाओं का बड़ा प्रभाव पड़ता है। मातृभूमि का और उसका घनिष्ट संबंध रहता है, किन्तु सबसे बड़ा प्रभाव तो उस संस्कृति का पड़ता है, जिसके प्रकाश में विद्यार्थी का लालन–पालन हुआ है। इसीलिये यह आवश्यक हो जाता है कि अपनी संस्कृति का अध्ययन करने, उसे व्यक्त करने और अपने जीवन में उसी का अनुसरण करने का उद्देश्य हो। विद्यार्थी को अपने शिक्षाकाल में ही नागरिकता के समस्त गुणों को आत्मसात कर लेना चाहिये और इसके लिये आवश्यक है कि उसे नियत समय तक सांस्कृतिक उत्थान पतन की शिक्षा दी जाय। साथ ही राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि विश्वविद्यालय शुद्ध वैज्ञानिक और यांत्रिक शिक्षा का भी उत्तम प्रबंध करे। विद्यार्थियों को आरंभ में सभ्यता और संस्कृति की ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये, जिससे वे जीवन की पूर्णता की प्राप्ति ही अपनी साधना–अपना तप बना लें। पाठ्यचर्या तो उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होती है। जब किसी समाज की शिक्षा के उद्देश्यों पर उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ता है तो उसकी पाठ्यचर्या पर भी पड़ना चाहिये। किसी समाज की सामान्य एवं आधारभूत पाठ्यचर्या तो मूल रूप से उसकी संस्कृति पर ही आधारित होती है, उसमें उसी समाज की भाषा, उसी समाज का साहित्य, उसी समाज के कला–कौशल, उसी समाज का संगीत–नृत्य, उसी समाज के आदर्श–विश्वास और उसी समाज के मूल्यों की शिक्षा को सम्मिलित किया जाता है।

संस्कृति शिक्षा के अन्य पक्षों को भी किसी न किसी रूप में प्रभावित करती है जिन समाजों की संस्कृति में वर्गभेद होता है। उनमें जन शिक्षा की अवहेलना की जाती है। यह बात सत्य है कि किसी समाज की संस्कृति का प्रभाव उसकी शिक्षा पर पड़ता है तो दूसरी ओर यह भी सत्य है कि किसी समाज की शिक्षा का प्रभाव उसकी संस्कृति पर पड़ता है। किसी स्थान की संस्कृति उसकी युग–युग की साधना का परिणाम होती है, इसके प्रति उसका विशेष लगाव होता है और इसे वह सुरक्षित रखना चाहता है। शिक्षा उसके इस कार्य में उसकी सहायता करती है। वर्तमान समय में वैज्ञानिक आविष्कारों ने हमारे जीवन को परिवर्तित कर दिया है, परन्तु फिर भी हमारी आस्था अपनी संस्कृति में बनी हुयी है हमारे आदर्श, विश्वास और मूल्य वही है, जो हमारी संस्कृति के हैं अनेकों परिवर्तन होने के बावजूद भी हम आध्यात्मिकता का दामन पकड़े हुये है, यह कार्य शिक्षा के द्वारा ही संभव है। सामान्यतः मनुष्य जिस समाज में पैदा होता है उसी की क्रियाओं में भाग लेकर उसी की संस्कृति को सीखकर उसमें समायोजन करता है और इस प्रकार किसी समाज की संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है परन्तु इस कार्य में शिक्षा की भी बड़ी भूमिका होती है। कोई भी समाज अपनी आने वाली पीढ़ी में संस्कृति का हस्तांतरण अपने सही रूप में शिक्षा के द्वारा ही करता है यहबात दूसरी है कि यह कार्य वह अनौपचारिक शिक्षा द्वारा करता या निरौपचारिक शिक्षा द्वारा या औपचारिकता शिक्षा द्वारा बच्चों को अपनी संस्कृति का सही ज्ञान तो औपचारिक शिक्षा द्वारा ही होता है । यही कारण है कि आज प्रायः सभी समाजों की शिक्षा का एक उद्देश्य सांस्कृतिक विकास है। शिक्षा द्वारा एक ओर बच्चे अपनी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करते है और दूसरीओर देश–विदेश की अन्य संस्कृतियों का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं। साथ ही शिक्षा द्वारा उनमें विवेक शक्ति का विकास होता है और उनका दृष्टिकोण विकसित होता है। इस विवेक शक्ति से वे आगे चलकर अपनी संस्कृति के मूल्य तत्वों में से चुनाव करते हैं एवं अपने अनुभव एवं विवेक के आधार पर उनमें से कुछ में परिवर्तन करते हैं और इस प्रकार अपनी संस्कृति का विकास करते हैं। संस्कृति के अभाव में शिक्षा निस्सार और निष्प्रयोजन है यदि किसी समाज की शिक्षा में कोई

विशेषता मिलती है तो उसका एकमात्र कारण उसकी संस्कृति है। वस्तुतः प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति के अनुरूप ही शिक्षा की व्यवस्था करता है। शिक्षा अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये विविध प्रकार से संस्कृति की सेवा और सहायता करती है और अपने कार्यों को संपन्न करने के लिये उसका सहयोग प्राप्त करती है।

शिक्षा का संस्कृति पर प्रभाव का ही प्रतिफल है कि आज शिक्षा नवीन सभ्यता एवं संस्कृति को बढ़ावा दे रही है समाज में व्यक्ति आध्यात्मिकता से पृथक् होकर वैज्ञानिक एवं व्यसायिक गतिविधियों के आत्मसातीकरण की ओर उन्मुख हो रहा है। शिक्षा द्वारा नवीन मूल्यों अभ्युदय करके संस्कृति को उससे सम्पृक्त किया जा रहा है। शिक्षा को संस्कृति के हस्तांतरण की प्रक्रिया कहा जाता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संस्कृति के अवयवों को बीजोरोपित करने का कार्य शिक्षा ही करती है। शिक्षा संस्कृति का विकास ही नहीं करती, अपितु कुत्सित मंतव्यों, कुरीतियों से व्यक्ति को मुक्ति प्रदानकर उसे कुशल सामाजिक नागरिक के रूप में भी प्रतिष्ठित करती है। इस प्रकार संस्कृति के विकास में शिक्षा महती भूमिका अदा करती है। शिक्षा अपने समीक्षात्मक, चिन्तनात्मक, आलोचनात्मक, तार्किक व बौद्धिक विशिष्टताओं से संस्कृति को सतत् रूप से प्रगतिशील व प्रासंगिक बनाकर उसका रक्षण एवं संवर्द्धन करती है। शिक्षा संस्कृति के विभिन्न अवयवों का मूल्यांकन करती है तथा संस्कृति की विवेचना करके उसको परिपक्व एवं संपन्न बनाती है। शिक्षा के द्वारा ही हम अर्थहीन, महत्वहीन और मूल्यहीन परम्पराओं, रीति–रिवाजों का परित्यग करके नूतन आदर्शों, नवीन परम्पराओं की ओर अग्रसर होते है जो अधिक सामयिक, प्रासंगिक, मूल्यवान और उपयोगी होते हैं। इन नवीन विशिष्टताओं के समन्वित हो जाने से स्वाभाविक रूप से संस्कृति समृद्ध हो जाती है। इस प्रकार शिक्षा और संस्कृति एक–दूसरे के पूरक और अर्न्तसंबंधित हैं। जहाँ संस्कृति शिक्षा के विविध उपांगों का परिष्कार और परिमार्जन कर उसे समय–सापेक्ष बनाती है वहीं संस्कृति स्वयं भी शिक्षा से नवीन कलेवर प्राप्त करती है। वास्तव में शिक्षा संस्कृति को पल्लवित, पुष्पित बनाने में तथा सांस्कृतिक विरासत के सृजन, संरक्षण, विकास, परिशोधन, हस्तान्तरण तथा परम्पराओं के आत्मसातीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

किसी समाज की शिक्षा अनेक कार्यों के साथ–साथ समाज विशेष की संस्कृति को सुरक्षित रखती है उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित करती है और उसमें विकास करती है। आज सभी प्रगतिशील समाज अपने बच्चों में सांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास करने की ओर प्रयत्नशील हैं और यह कार्य शिक्षा के द्वारा ही कर रहे है। हम यह कह सकते हैं कि किसी समाज की शिक्षा और संस्कृति किसी न किसी रूप और मात्रा में एक–दूसरे को प्रभावित करते है। औरे यह एक ऐसा चक्र है, जो सदैव से चलता आ रहा है औरे सदैव चलता रहेगा।

संदर्भ–ग्रन्थ :

- Bantock, G.H. Education culture and emotion, London faber and faber.
- Collier K.G. The Social purpose of Education, London, Rountledge & Kegan Paul
- Rajgopalachari. C. Our culture , Bombay, Bhartiya vidhya Bhawan.
- Zellner A. A. Education in India, Newyork Book man Associates III
- पूनम मदान, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- गुरूसरन दास त्यागी, ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 17, July-Dec. 2020 ISSN : 2249-7331

डॉ0 अम्बेडकर एवं भारतीय समाज

डॉ0 भारती रस्तोगी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

भारत वर्ष में एक स्वस्थ समाज के सुचारू संचालन हेतु वर्ण–व्यवस्था का निर्माण हुआ जो प्रारम्भ में कर्माश्रित थी और आगे चलकर जन्माश्रित हो गयी और समाज में विभेदीकरण तथा स्तरीकरण का कारण बनी। भारत देश बहुजातीय एवं बहुभाषीय है जिसमें जाति–व्यवस्था के कारण राष्ट्रीयता के प्रवाह में बाधा पहुँचती है और सामाजिक जीवन में अलगाव की प्रवृत्ति पनपती है। विभिन्न जातियों के बीच वैमनस्य की भावना विद्यमान है। जातिगत भावनाओं से आर्थिक विकास रुकता है। इस देश की बहुसंख्यक जनता हिन्दू धर्मावलम्बी हैं। हिन्दू धर्म में अनुशासित लोग वर्ण–भेद, छुआछूत, जाति–भेद, ऊँच–नीच के भेदभाव आदि से ग्रस्त हैं जो हिन्दू समाज की रुग्ण मानसिकता केपरिचायक हैं। देश में व्याप्त विषमताओं, भेदभाव तथा शोषण के विरोध में एक क्रान्तिकारी महापुरुष ने इन असमानताओं को समूल समाप्त करने हेतु जीवनपर्यन्त प्रयास किया और वह महान व्यक्ति भारतरत्न बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जी (1891–1956)थे।प्रस्तुत प्रपत्र में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की जीवनी का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए भारत में व्याप्त जातिगत भेदभावका विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही साथ डॉ0 अम्बेडकर द्वारा इन सामाजिक विषमताओं को दूर करने के लिए किए गए प्रयासों का उल्लेख करने की भी चेष्टा की गयी है।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर : जीवन परिचय

डॉ0 भीमराव राम जी अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल को मध्य प्रदेश की महू, बड़ौदा रियासत में 1891 ई0 को हुआ। उनके माता–पिता अछूत थे। अम्बेडकर के पिता का नाम राम जी था। वे सेना में सिपाही थे और प्रगति करते–करते सूबेदार मेजर के पद तक पहुँच गए थे। इनकी माता का नाम भीमाबाई था और वह एक निरक्षर महिला थी। वे अपनी माँ की चौदहवीं सन्तान थे। बाबा साहब का बचपन छुआछूत के कलंक में बीता था। उन्हें स्कूल के अन्य छात्रों से अलग बैठना पड़ता था। बैठने का टाट भी घर से ले जाना पड़ता था। यहाँ तक कि नल की टोटी छूना अपराध था। इन सभी प्रकार के उत्पीड़नों के बावजूद उन्होंने 1908 में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की जो कि अछूतों के लिए

एक बड़ी उपलब्धि थी। छुआछूत जैसी सामाजिक विषमता के घाव उनके अवचेतन मन में उतर गए और अपने व्यक्तिगत अनुभवों को आधार बनाकर वे हिन्दू धर्म की सामाजिक विषमताओं के शत्रु बन गए। वे हिन्दू धर्म को पैशाचिक हिन्दू धर्म कहा करते थे (कृष्णदत्त, 2005)।

स्नातक पूर्ण करने के पश्चात वे कोलम्बिया विश्वविद्यालय, यू0एस0ए0 चले गए जहाँ उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। भारत वापस आने पर उन्होंने बड़ौदा के राजा के कार्यालय में मिलिटरी सेक्रेटरी के रूप में कार्य किया। यहाँ भी उन्हें पहले की तरह उच्च जातियों का तिरस्कार सहना पड़ा। उन्हें पीने का पानी तक चपरासी अपने हाथ से नहीं देता था और फाइलें उन्हें हाथ में न पकड़ा कर दूर से ही दी जाती थी। सन् 1920 मे कानून का अध्ययन करनेलन्दन चले गये। सन् 1922 में जर्मन के बोन विश्वविद्यालय में कुछ महीने तक उन्होंने अध्ययन किया। 1923 में बैरिस्टरी पास की और भारत वापस आ गए। बम्बई हाई कोर्ट में वकालत की तथा बम्बई विधान परिषद के

सदस्य मनोनीत हुए। इन सभी सफलताओं के बावजूद उनके साथ जातिगत भेदभाव निरन्तर होता रहा। ऊँची जाति के वकील उनके साथ एक मेज पर चाय नहीं पीते थे परन्तु वे अपने मुवक्किलों के साथ अत्यधिक सहजता महसूस करते थे क्योंकि उनके साथ उन्हें अपने नीची जाति के होने का एहसास नहीं होता था। धीरे–धीरे दलित वर्ग में उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान बढ़ने लगा और उनका यश फैलने लगा। वे भारतीय समाज में जातिवाद को समाप्त करने और समानता लाने के लिए प्रतिबद्ध हो गए और यही नहीं कमजोर, उपेक्षित एवं दलित वर्ग के लोगों ने उन्हें इस रूप में स्वीकार भी किया। बाबा साहेब जीवन पर्यन्त कमजोर एवं दलित वर्ग को उनके अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष करते रहे, वे भारतीय समाज की अन्यायपूर्ण एवं क्रूर जातिवादिता को समूल समाप्त कर देना चाहते थे। इस दिशा में उन्होंने अनेक प्रयास किये। उनके द्वारा किये गये इन प्रयासों का अध्ययन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त विषमताओं एवं भेदभावपूर्ण व्यवस्थाओं की ओर दृष्टि डाली जाए।

भारत में जातिवाद एवं हरिजन समस्या

वर्ण–व्यवस्था भारत की एक अनूठी सामाजिक वास्तविकता है। मनुष्य के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए उसकी कुछ मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति अनिवार्य है जिसके लिए उन्हें पारस्परिक रूप से निर्भर रहते हुए कार्य करना पड़ता है। समाज के सभी लोगों में कार्यक्षमता एवं बुद्धि के आधार पर भिन्नताएँ पायी जाती हैं। कुछ व्यक्ति बौद्धिक रूप से सक्षम होते हैं तो कुछ शारीरिक शक्ति की दृष्टि से अधिक बलशाली होते हैं। सामाजिक विकास के प्रारम्भिक चरण में सुचारू व्यवस्था एवं संगठन हेतु कार्यों का आवंटन व्यक्तियों की स्वाभाविक कार्यक्षमता के आधार पर किया गया। जो व्यक्ति अधिक योग्य एवं कार्यकुशल थे उन्हें समाज के महत्वपूर्ण दायित्व सौंपे गए और जो सामान्य रूप से सक्षम थे उन्हें उन्हीं के अनुरूप कार्य आवंटित किए गये। जो व्यक्ति जितना अधिक महत्वपूर्ण कार्य करता था समाज में उसकी उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा होती थी। इसी आधार पर भारतीय समाज में स्तरीकरण की व्यवस्था स्थापित हुई। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में चार वर्णों की उत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है। पुरुष (ब्रह्म) ने अपना ध्वंश किया जिससे एक सुव्यवस्थित सामाजिक संरचना अस्तित्व में आ सके। ब्राह्मणों का जन्म परम पुरुष ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रियों का भुजा (बाहों से),वैश्यों का जाँध से और शूद्रों का जन्म पैरों से हुआ माना गया (जगजीवन, 2001)। वैसे तो वर्ण–व्यवस्था की जड़ें अतीत में छुपी हैं और इसी कारण समाजशास्त्र के विद्वान् इस विषय पर एकमत नहीं हैं कि जातिभेद की इस प्रथा का आरम्भ कैसे हुआ और वह किस प्रकार विकसित हुई। हाँ, एक बात है और वह यह कि वर्ण–व्यवस्था की रूपरेखा स्पष्ट है और उसके बारे में कोई मतभेद नहीं है।

ब्राह्मणों द्वारा निर्मित यह व्यवस्था पाँच मुख्य विभाजनों– चार जाति समूहों (वर्ण) एवं एक अछूत वर्ग (पंचम वर्ग) जिसे अस्पृश्य वर्ग (शूद्र) कहा जाता है, पर आधारित है। शूद्र वर्ग सेवकों एवं दासों का वर्ग था। यह अछूत लोग सबसे 'निकृष्ट'एवं अनुष्ठानिक रूप से अपवित्र माने जाने वाले लोग थे (नानक चन्द्र, 2004)। जातियाँ मुख्यतः शुद्धता पर आधारित हैं। इस आधार पर ब्राह्म सर्वश्रेष्ठ हैं जिन जातियों के हाथ में राजनीतिक और आर्थिकशक्तियाँ केन्द्रित हैं, ब्राह्मण उन जातियों से ऊपर हैं। जातियों में श्रम–विभाजन था जिसके चलते आपस में उनकीएक–दूसरे पर निर्भरता बनी हुई थी। प्रदूषण को संक्रामक माना गया, इसलिए उच्च जाति के लोग अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए अपना सम्पर्क अपने से नीची जातियों से नहीं रखते थे। जाति–विभेद को बनाए रखने के लिए विभिन्न तरीके इस्तेमाल किये जाते रहे। अन्तर्विवाह के माध्यम से तथा खान–पान सीमित रखकर यह

प्रयास किया गया जिन लोगों ने जाति की शुद्धता के नियम को तोड़ने का प्रयास किया,उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया गया। छुआछूत की भी प्रथा प्रचलित थी। अशुद्ध लोग बाकी लोगों को नहीं छू सकते थे। वैसे तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के आपसी सम्बन्ध भी सन्तोषजनक नहीं थे, फिर भी वे मिलकर कार्य करने में सफल हुए। शूद्रों कोधन–सम्पत्ति अर्जित करने की अनुमति नहीं दी गयी, क्योंकि ऐसा न हो कि वह तीनों वर्गोंपर निर्भर ही न रहें। उसे विद्या प्राप्त करने से रोका गया कि कहीं ऐसा न हो कि वह अपने हितों के प्रति सजग हो जाये। उसके लिए शास्त्र धारण करना निषिद्ध था कि कहीं ऐसा न हो कि वह उनकी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने के साधन प्राप्त कर लें। तीनों वर्ण शूद्रों के प्रति ऐसा व्यवहार करते थे, इसका प्रमाण मनु के कानून में मिलता है। सामाजिक अधिकारों के सम्बन्ध में मनु के कानून से ज्यादा बदनाम और कोई विधि–संहिता नही है (सिंह, 1998)।

शूद्रों की स्थिति के विषय में मनु के नियम अध्ययन के लिए अति आवश्यक हैं। इन नियमों ने हिन्दुओं की मनोवृत्ति का ढाला और शूद्रों के प्रति उनके दृष्टिकोण को निर्धारित किया, जो इस समय और हर युग में सबसे अधिक संख्या में हिन्दू समाज के अंग रहे हैं। मनु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहस्थों को आदेश देता है कि वे उस देश में न रहें जहाँशासक शूद्र हों। शूद्र सम्मानित व्यक्ति न समझा जाए। मनु का आदेश है कि कोई भी ब्राह्मण जो जन्म से ब्राह्मण है, अर्थात् जिसने न तो वेदों का अध्ययन किया है और न वेदों द्वारा अपेक्षित कोई कर्म किया है, वह राजा के अनुरोध पर उसके लिए धर्म का निर्वचन कर सकता है, अर्थात् न्यायाधीश के रूप में कार्य कर सकता है, लेकिन शूद्र यह कभी भी नहीं कर सकता चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो (अम्बेडकर, 1956)। अगर कोई शूद्र अहंकारवश ब्राह्मणों को धर्मोपदेश देने की धृष्टता करता है तो राजा को चाहिए कि वे उसके मुँह और कान में खौलता तेल डलवा दें। वेदाध्ययन करने पर शूद्रों को दण्डित करने के सम्बन्ध में मनु के परवर्ती लेखक तो और भी कठोर हैं। उदाहरण के लिए कात्यायन का कहना है कि यदि कोई शूद्र वेद वाक्य सुन ले अथवा वेद के एक शब्द का भी उच्चारण करे, तो राजा उसकी जिह्वा को दो भागों में चिरवा दे और उसके कान में पिघला हुआ गरम सीसा डलवाए। शूद्रों द्वारा सम्पत्ति रखे जाने के सम्बन्ध में मनु की व्यवस्था निम्नांकित है– धनोपार्जन में समर्थ होने पर भी शूद्र को धन का संग्रह नहीं करना चाहिए क्योंकि नीच पुरुष, जिसने धन का संग्रह कर लिया है अहंकारी हो जाता है। यदि ब्राह्मण अपनी जीविकोपार्जन के लिए कष्ट में है तो वह निःसंकोच अपने शूद्र की सम्पत्तिको अधिग्रहीत कर ले।

शूद्र केवल एक ही व्यवसाय कर सकता है। मनु के अटल नियमों में यह भी एक अटल नियम है। मनु कहता है : ब्रह्मा ने शूद्रों के लिए एक ही व्यवसाय नियत किया है वह है विनम्रतापूर्वक तीन अन्य वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य की सेवा करना। प्रत्येक ब्राह्मण शूद्र को दास कर्म करने के लिए बाध्य कर सकता है क्योंकि शूद्रों की सृष्टि ब्राह्मणों का दास बनने के लिए ही हुई है (अम्बेडकर, 1956)। जो शूद्र द्विज को दारुण वचन कह उसकी निन्दा करता है उसकी जिह्वा को काटकर फेंक देना चाहिए, क्योंकि वह जन्म से नीच है। मनु इतने से ही सन्तुष्ट नहीं है। वह कहता है कि शूद्र का यह निम्न स्तर इस वर्ण के व्यक्तियों के नामों और उपनामों में परिलक्षित हो। मनु कहता है : ब्राह्मण के नाम का प्रथम अंश मंगल सूचक, क्षत्रिय का शक्ति सूचक, वैश्य का धनसूचक और शूद्र का कुछ ऐसा हो जो तिरस्कार सूचक हो।

मनु द्वारा वर्णित उपरोक्त शूद्र विरोधी नियमों के अध्ययन से शूद्रों की दारूण स्थिति एवं उनकी लाचारगी का बोध हो जाता है। यद्यपि समय व्यतीत होने के साथ–साथ शूद्रों की स्थिति में

थोड़ा–बहुत परिवर्तन आया परन्तु उनके शोषण की परम्परा निरन्तर बनी रही। भारत में जो भी उपलब्धि हासिल हुई, जो भी सफलता मिली उसका श्रेय केवल ऊँची जातियों को ही जाता रहा है, छोटी जाति के लोगों से सिर्फ समाज की प्रगति के लिए काम लिया गया परन्तु उन्हें इतिहास निर्माण में साझीदार नहीं बनाया गया। ऊँची जातियों के लिए ऐसा करना इस कारण सम्भव था क्योंकि वे समाज में सत्तारूढ़ थे और नीची जातियों के लोगों से बलपूर्वक काम ले सकते थे परन्तु वास्तविकता यह है कि जनसंख्या के एक बहुत बड़े भाग को देश और राष्ट्र के भाग्य निर्माण में रचनात्मक भूमिका निभाने से वंचित रखा गया। भारतीय समाज की यही एक बड़ी कमजोरी रही है जिसके कारण न केवल निचली जातियों का अपमान हुआ बल्कि ऊँची जातियाँ भी पथभ्रष्ट हो गयीं। यदि भारतीय समाज में अधिक सामन्जस्य होता और उसके प्रति निष्ठा की अधिक भावना होती तो सम्भवतः मुसलमान आक्रांता भारत पर विजय पाने में सफल न होते। जातिवाद को भारतीय सामाजिक संरचना के सन्दर्भ और इतिहास में कई तरह से सोचा गया। डॉ0 अम्बेडकर ने जाति संस्था के उन्मूलन का नारा समतामूलक समाज की स्थाना के लिए उठाया था। उनका विश्वास था कि जाति संस्था का व्रजढाँचा मानव की स्वतन्त्रता एवं मनुष्यता के उदात्त मूल्यों को धूमिल करता है। इसीलिए वे जातिवाद के उद्‌गम और उसके स्वरूप की खोज करते हुए उसे समूल नष्ट करना चाहते थे। उनका उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग एवं समूह सम्मानित जीवन जी सके, सभी समूह एक–दूसरे का सम्मान करें। वे आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास भी चाहते थे।

दलितों के उत्थान के लिए अम्बेडकर का संघर्ष

दलितों की दशा देखकर डॉ0 अम्बेडकर के आँसू उमड़ पड़ते थे और वे कहते थे कि तुम्हारे मुखों की हताश एवं निराश दशा देखकर मेरा हृदय फट जाता है। तुम लोग इतना अत्याचार सहते हो फिर भी तुम्हें सहनशीलता त्यागने का विचार नहीं आता। उन्होंने दलितों को समाज में उच्च स्थान दिलाने के लिए जीवनपर्यन्त संघर्ष किया। इसी क्रम में उन्होंने 20 जुलाई 1924 में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। इसी वर्ष से उन्होंने पूरे संकल्प के साथ समाज–सुधार का झण्डा उठाया। 9 मार्च 1924 को बम्बई के दामोदर हॉल में एक विशाल सभा का आयोजन किया। इस सभा को बुलाने का प्रधान उद्देश्य था– अछूतों की उन्नति के लिए एक केन्द्रीय संस्था का गठन करना जिसमें दलितों में शिक्षा–प्रसार कार्य, कृषि एवं अन्य उद्योगों के द्वारा दलितों की आर्थिक स्थिति में सुधार, दलितों–पिछड़ों के लिए अध्ययन केन्द्र स्थापित करना तथा दलितों के साथ होने वाले अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाना इत्यादि लक्ष्य रखे गए। बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना ने अछूतों को नवीन जीवन से भर दिया। उनमें आत्म–सम्मान, आत्म विकास, आत्म रक्षा का भाव जागृत हुआ। 1926 में बाबा साहेब जियूटी गाँव में जागरण करने गए। उन्होंने वहाँ जाकर कहा कि अछूतों को अपनी बस्तियाँ अलग बसाने के लिए भूमि प्राप्त करने के लिए आन्दोलन चलाना चाहिए। इसी वर्ष में उन्होंने समता सैनिक दल का गठन किया। इस दल का उद्देश्य था शक्ति पर नियन्त्रण करना, शील रखना तथा सन्त तुकाराम की अहिंसा व्याख्या में आस्था व्यक्त करना।

सन् 1927 में राज्यपाल ने अम्बेडकर को बम्बई विधान परिषद् का सदस्य मनोनीत किया। प्रसन्न होकर दलित वर्ग के अध्यापकों ने बाबा साहेब को 1928 में दामोदर हॉल, बम्बई में सम्मानित किया। जो थैली भेंट की गयी थी वह उन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा को भेंट कर दी। इस तरह के अनेक कार्य उन्होंने किये जिनके द्वारा दलितों में नयी चेतना एवं उत्साह का संचार हुआ। इसी वर्ष मनुस्मृति के विरोध में जगह–जगह भाषण हुएतथा उनकी होली जलाई गयी। साइमन कमीशन

के सामने बाबा साहेब ने स्मरण पत्र पेश किया तथा यह भी कहा कि जिन लोगों के हाथ में भारत राष्ट्र की बागडोर है वो क्यों पिछड़े वर्गों के हितों की उपेक्षा करते हैं। उन्होंने जोर देकर कहा कि अछूत पिछड़े लोग जनसंख्या का पाँचवाँ भाग हैं। अछूतों को शिक्षा की विशेषकर राजनीतिक शिक्षा की आवश्यकता है। सार्वजनिक मन्दिरों में अस्पृश्यों को समान अधिकार प्रदान किये जाने के उद्देश्य से अम्बेडकर ने अमरावती में अम्बा देवी मन्दिर प्रवेश (1927), ठाकुर द्वारा मन्दिर प्रवेश (1927), मुम्बई में गणपति प्रांगण प्रवेश (1929) तथा नासिक में कालाराम मन्दिर प्रवेश (1930) हेतु दलितों को संगठित किया।

दलित लोगों ने महाड (जिला कुलाबा) में 20 मार्च 1927 को एक विशाल कांफ्रेन्स करने का विचार बनाया। इस कांफ्रेन्स के भीतर अम्बेडकरवाद की प्रेरणा दीप्त थी। इस कांफ्रेन्स में हजारों गुजरात–महाराष्ट्र के लोगों ने पूरे जोश से हिस्सेदारी की। डॉ0 अम्बेडकर ने 'दापोली' का स्मरण करते हुए कहा– हम प्रगतिशील लोग रहे हैं, देश के कई भागों में हमारा शासन रहा है, लेकिन हिन्दू धर्म–व्यवस्था हमें अछूत कहती है। इस व्यवस्था को तोड़कर धूल में मिलाना है। महाड मोर्चा क्या खुला देश भर खौल उठा। सवर्ण हिन्दुओं के अत्याचार की चर्चा प्रबल हो उठी। सवर्ण हिन्दुओं ने जगह–जगह बाबा साहेब की कठोर आलोचना शुरू कर दी। इस स्थिति को समझते हुए अम्बेडकर जी ने 3 अप्रैल 1927 को बम्बई से एक पाक्षिक मराठी पत्रिका निकाली, जिसका नाम था 'बहिष्कृत भारत'। 1930 में पहली बार गोलमेज कांफ्रेन्स लन्दन में हुई। इस ऐतिहासिक अधिवेशन में डॉ0 अम्बेडकर ने अछूतों–दलितों का पक्ष प्रस्तुत करते हुए ऐतिहासिक भाषण दिया। उन्होंने कहा कि भारत में अछूतों की दशा दासों से भी बदतर है। जब हम अपनी आधुनिक स्थिति पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि हम पतन की ओर बढ़ रहे हैं। उन्होंने कहा कि कोई दूसरा हमारे दुःख दूर नहीं कर सकता। जब तक हमारे हाथों में राजनीतिक शक्ति नहीं आ जाती, हमारे दुःख दूर नहीं हो सकते। डॉ0 अम्बेडकर लन्दन में रहकर वहाँ के प्रमुख नेताओं से मिले। कई समाचार–पत्रों में दलित–समस्याओं पर लेख लिखे। सम्पादकों के नाम नामी–गिरामी पत्र–पत्रिकाओं में टिप्पणियाँ भेजी। सभा–गोष्ठी–सेमीनार आदि सभी में भारत में दलित–दुर्दशा की स्थिति का रूप प्रस्तुत किया। अपने को मानवतावादी कहने वाले अंग्रेजों से अपील की कि वे भारत के दलितों की दुर्दशा पर ध्यान दें। इस प्रकार भारत की दलित–समस्या को बाबा साहब ने पूरे विश्व में परिचित कराया।

29 अगस्त 1947 को संविधान सभा ने स्वतन्त्र भारत के संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए प्रारूप समिति का गठन किया और डॉ0 अम्बेडकर उसके सभापति बनाए गए। 4 नवम्बर 1948 को डॉ0 अम्बेडकर ने प्रारूप समिति द्वारा तैयार प्रारूप संविधान प्रस्तुत किया जो पूरी सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इसीलिए डॉ0 अम्बेडकर को भारतीय संविधान का शिल्पकार कहा जाता है। उन्होंने भारतीय संविधान की रचना करते समय राष्ट्रीय एकता–अखण्डता एवं सामाजिक समता का बहुत ध्यान रखा। संविधान निर्माण में बाबा साहेब ने दलितों एवं अनुसूचित जातियों के हितों को ध्यान में रखते हुए उनका सामाजिक उत्थान करने का प्रयास किया। उन्होंने इस बारे में पूरी सतर्कता बरती कि अनुसूचित जातियों के संरक्षण और उनकी रक्षा के उपायों को खास तौर पर और आम नागरिकों के अधिकारों को पूर्णतः सुनिश्चित कर दिया जाए जिससे उनके शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को बढ़ावा मिले और वे अपनी सामाजिक निर्योग्यताओं से मुक्त हो सकें। संविधान में अनुसूचित जातियों के हितों का संरक्षण और उन्नयन करने वाले महत्वपूर्ण अनुच्छेद इस प्रकार हैं (हसनैन, 2004):

क) अनुच्छेद 17 द्वारा अस्पृश्यता के उन्मूलन की बात कही गयी है और किसी भी रूप में उसके आचरण को निषिद्ध किया गया है।
ख) अनुच्छेद 25(2) के तहत हिन्दुओं के सार्वजनिक धार्मिक स्थलों को हिन्दुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का उपबन्ध किया गया।
ग) अनुच्छेद 15(2) के जरिए वे सभी निर्योग्यताएँ, दायित्व, निरबन्ध या शर्तें हटाई गयी हैं जो दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों के प्रवेश पर थीं। राज–निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग की स्वतन्त्रता सभी नागरिकों को थी।
घ) अनुच्छेद 29(2) में कहा गया है कि राज्य द्वारा पोषित या राज–निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को वंचित नहीं किया जायेगा।
ङ) अनुच्छेद 330 और 332 द्वारा लोक सभा और राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों (असम, नागालैण्ड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम के जनजातिय क्षेत्रों को छोड़कर) के लिए स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था की गयी है।
जून 1956 में बाबा साहेब नेसिद्धार्थ लॉ कॉलेज की स्थापना की। 14 अक्टूबर को इसी वर्ष उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। बाबा जी के लाखों अनुयायी भी बौद्ध बने। वे उन दलित अथवा अछूत जाति के व्यक्तियों, जो कि शिक्षित एवं सम्पन्न थे, से अत्यन्त असन्तुष्ट थे क्योंकि वे लोग अपने ही वर्ग के कमजोर व्यक्तियों के अधिकारों को सुरक्षित कराने के लिए कोई संघर्ष नहीं करते थे, बल्कि वे सिर्फ अपने ही परिवार और दुनियाँ में मस्त रहते थे और बाकी लोगों के दर्द से बेखबर थे। उनका मानना था कि केवल संविधान लागू हो जाने से अथवा कानून बन जाने से दलितों एवं अछूतों की स्थिति में सुधार नहीं आने वाला। सभी संवैधानिक सुविधाओं का पूर्णतयः लाभ तब उठाया जा सकता है जब कि कुशल नेतृत्व में अपने अधिकारों के लिए निरन्तर संघर्ष जारी रखा जाये।

निष्कर्ष

बाबा साहेब के प्रयत्नों के लम्बे संघर्षपूर्ण प्रयास इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि वे उपेक्षितों के मसीहा थे।उन्होंने भारतीय समाज में श्रेणीबद्ध असमानता एवं व्यवस्थाओं की अस्थिरता जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर करने का संकल्प लिया। उनका सपना था कि एक ऐसे समाज की स्थापना हो जिसमें प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग एवं समूह सम्मानित जीवन जी सके, सभी समूह एक–दूसरे का सम्मान करें आदि। वे आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास भी चाहते थे। जो समस्यायें अम्बेडकर जी के काल में थींवह आज भी पूर्णतया सुलझ नहीं पायी हैं। आज भी 'संगठन, शिक्षा एवं संघर्ष' का नारा उतना ही प्रासंगिक है। आज आवश्यकता एक समर्पित नेतृत्व की है जो शोषित वर्ग की चेतना को और अधिक सशक्त बना सके और उन्हें उच्च स्तरीय जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित कर सके। वर्तमान समय में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के चलते भारतीय समाज अत्यधिक जटिल होता जा रहा है ऐसे में कमजोर वर्ग का सशक्त होना अनिवार्य है अन्यथा उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। इन गम्भीर परिस्थितियों में हमें भारत रत्न बाबा साहेब डॉ0 भीमराव राम जी अम्बेडकर जैसे दस भीमराव अम्बेडकर की आवश्यकता है जो भारत जैसे देश को सँवार सकें।

सन्दर्भ सूची

- पालीवाल कृष्णदत्त, 2005, *डॉ0 अम्बेडकरसमाज–व्यवस्था और दलित साहित्य*, किताब घर, नई दिल्ली।
- पूर्ववत्

- राम जगजीवन, 2001, *भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
- रत्तू नानकचन्द, 2004, *डॉ0 अम्बेडकर जीवन के अन्तिम कुछ वर्ष,* किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली।
- सिंह मोहन, 1998, *डॉ0 भीमराव अम्बेडकर,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय,खण्ड 7, 1956
- पूर्ववत्
- पूर्ववत्
- चतुर्वेदी प्रेरणा, 2018, *सामाजिक समस्या एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर,* वेबसाइट : pravakta.com/social-equality-and-dr-bhimrao-ambedkar/

ग्रामीण विकास में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की भूमिका का समाजशास्त्रीय अध्ययन

धर्मेन्द्र कुमार
शोध छात्र,समाजशास्त्र विभाग
म.गां.काशी विद्यापीठ,वाराणसी।

डॉ.राहुल गुप्ता
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,समाजशास्त्र विभाग
म.गां.काशी विद्यापीठ,वाराणसी।

समकालीन विश्व में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की आवश्यकता, मानव समाज के चतुर्दिक विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक है। आज के प्रतिस्पर्धात्मक औद्योगिक एवं तकनीकी समाज का इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के अभाव में विकास की उचाईयों को प्राप्त करना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन सा प्रतीत होता है। आधुनिक समय में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के स्वरूप को काफी विकसित किया जा चुका है। जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक समाज के व्यक्ति से व्यक्ति की दूरी और देश से देश की दूरी अत्यधिक कम हो गई है। इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की ही देन है कि हम हजारों मील दूर हो रहे क्रिया–कलापों को अपने घर बैठे सुन और देख सकते है।किसी भी देश या समाज के विकास में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। जन सामान्य से लेकर बड़े से बड़ा नेता, प्रशासनिक, अधिकारी, बुद्धिजीवी, उद्योगपति, व्यापारी आदि कोई भी इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। वर्तमान में तो इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की उपेक्षा ग्रामीण समुदाय भी नहीं कर सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण विकास में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की क्या भूमिका है पर प्रकाश डालने तथा इसके संभावित सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन किया गया है यह प्रपत्र द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है।

बीज शब्द : इलेक्ट्रानिक संचार, सूचना क्रान्ति, इंटरनेट, कम्यूनिकेशन।

आधुनिक युग सूचना क्रान्ति का युग है। यह निर्विवाद है कि सूचना क्रान्ति ने हमारे जीवन के हर हिस्से को प्रभावित किया है। तकनीकी तौर पर इसकी झलक संचार के नित नये विकसित हो रहे माध्यमों में मिल जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इंटरनेट इन नये माध्यमों का केन्द्र बिन्दू है। सूचनाओं का आदान–प्रदान और उन्हें पलक झपकते ही एक कोने से दूसरे कोने में पहुंचा देना अब बेहद आसान हो चुका है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मोबाइल क्रान्ति ने आम आदमी के साथ–साथ ही ग्रामीण परिदृश्य में बहुत अधिक बदलाव ला दिया है। वास्तव में मोबाइल हमारे सामाजिक व आर्थिक जीवन का अहम् हिस्सा बन गया है और इसने हमारे सोचने, काम करने, प्रतिक्रिया व्यक्त करने, बातचीत करने तथा जीवन शैली में बहुत अधिक परिवर्तन किया है। अब तो मोबाइल के बिना जीवन की कल्पना करना भी कठिन सा लगने लगा है।

आज के अत्याधुनिक युग में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। किसी भी देश या समाज के विकास में इसके योगदान एवं प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता। लोगों के द्वारा परम्परागत संचार माध्यमों की अपेक्षा इलेक्ट्रनिक संचार माध्यमों द्वारा सूचनाओं के प्रसार की तीव्रता के कारण इनके उपयोग में लगातार वृद्धि होती जा रही है। जहां

परम्परागत संचार माध्यमों से सूचनाओं के आदान प्रदान प्रसार आदि में काफी समय लगता था। आज इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के द्वारा यह अति कम समय में ही सम्पन्न हो जा रहा है।

इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के बढ़ते हुए प्रचलन को देखते हुए यह विषय इस प्रपत्र लेखन एवं अध्ययन के लिए चुना गया है ताकि इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का भारतीय ग्रामीण समाज पर पड़ने वाले प्रभावों को देखा जा सके। और इसका सदुपयोग भारतीय ग्रामीण समाज के विकास में किया जा सके ताकि आज नगरीय समाज के साथ ग्रामीण समाज का भी समान रूप से विकास हो सके।

ग्रामीण क्षेत्र में संचार के नवीन साधनों के द्वारा विकास का जो नवीन संदेश प्रसारित किया जा रहा उसके परिणामस्वरूप ग्रामीण व्यक्ति के सामाजिक आर्थिक गतिशीलता में व्यापक परिवर्तन की अपेक्षा की जाती है। वर्तमान अध्ययन के द्वारा यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है, कि नवीन साधनों एवं विकास के अभिकरणों के द्वारा ग्रामीण समाज में बोधगम्यता का स्तर और सहभागिता की परिधि किस मात्रा में विस्तृत हो रही है।

मनुष्य प्रारम्भ से ही सूचना प्राप्ति एवं उसके प्रेषण के लिए नाना प्रकार से क्रियाशील रहा है, क्योंकि हर व्यक्ति के लिए सूचना का अपना महत्व है। संचार व्यैक्तिक या समूह के साथ स्थापित किया जाता है, इसी से जुड़े जनसंचार का संबंध अपनी जन–सम्प्रेषणीयता जनसमूह तक पहुंचाना है। इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के रूप में आज रेडियो, टी0वी0, फिल्म, वीडियो, इंटरनेट, टेलीफोन, मोबाइल आदि की भूमिका सर्वोपरि है। इन इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमो के द्वारा हम विभिन्न समूहों तक शिक्षा, मनोरंजन एवं सूचनाएं प्रेषित करते हैं। आधुनिक समाज के लिए ये माध्यम अनेक रूपों में उपयोगी है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। किसी भी राष्ट्र के सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए दूरसंचार, मोबाइल सेवाओं को विश्व भर में एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में मान्यता दी जा रही है। भारत गाँवों का देश है, जिसकी लगभग 68 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है, जिसका मुख्य व्यवसाय कृषि है। कृषि प्रधान देश होने के कारण आज गांवों से शहरों का सीधा सम्पर्क न होना विकास में बाधक बन रहा है। किन्तु मोबाईल क्रान्ति ने सारे विश्व को एक साथ जोड़ दिया है। आज प्रत्येक योजना की जानकारी, प्रमुख घटनाओं का ज्ञान , शासकीय नीतियों की सूचना सीधे मोबाइल के माध्यम से प्रत्येक गांव में लगभग प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त हो जा रही है।

आज के परिप्रेक्ष्य में शासकीय व अशासकीय प्रत्येक कार्य को सीधा मोबाइल के माध्यम से जोड़ा गया है। चाहे वह ग्रामीण क्षेत्र हो या नगरीय क्षेत्र। आज मोबाइल के माध्यम से इंटरनेट, कम्प्यूटर, बैंक की कार्यप्रणाली, किसानों से जुड़ी योजनाएं ,सन्देश, मेल, आदि प्रत्येक कार्य मोबाइल के माध्यम से ही किये जा रहे हैं।

गाँव–गाँव तक हर प्रकार की सुविधायें तथा सूचनाएँ पहुंचाने का काम तेजी से बढ़ रहा है। किसान समाज को डिजिटल सुविधाओं से लैस करने के लिए सरकार भी कदम बढ़ा रही है। वह चाहे किसानों के लिए मोबाइल एप हो या फिर इंटरनेट के जरिये पंचायत–स्तर तक सरकारी काम–काजों को जोड़ना हो। भारत में ग्रामीण विकास और इलेक्ट्रानिक संचार का रिश्ता दिन–प्रतिदिन गहरा होता जा रहा है। इस बारे में असहमति की कोई गुंजाइश नहीं है कि भारत में हमेशा से आधुनिक संचार तकनीकों और माध्यमों का लक्ष्य नागरिकों को सामाजिक और राजनीतिक तौर पर सशक्त बनाना और उनका विकास करना रहा है। आजादी से पहले भी प्रिंट तकनीक के इस्तेमाल में राष्ट्रवादी प्रेस की अवधारणा ही नीहित थी। आजादी के बाद भी इस केन्द्रीय लक्ष्य को

देश के नीति निर्माताओं ने कभी अपनी आँखों से ओझल नहीं होने दिया कि दूरदराज क्षेत्रों और ग्रामीण आबादी तक विकास योजनाओं को पहुंचाना ही आधुनिक इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का लक्ष्य होना चाहिए।

आधुनिक समय में आर्थिक विकास के लिए इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की अत्यधिक उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि उद्योगों, व्यवसायों में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का अच्छा–खासा प्रयोग यह सिद्ध करता है कि किसी भी समाज के आर्थिक विकास के लिए इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु व्यावसायिक संचार माध्यम मुख्यतया शहरों को ही आधार मानते है। यहीं कारण है कि हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन की गति धीमी है। यदि हम चाहते है कि हमारे ग्रामीण नागरिकों का जीवन भी इसी अनुपात में ऊँचा उठे तो पहली आवश्यकता यह होगी किग्रामीणों द्वारा भी मान्य संचार माध्यमों का प्राथमिकता से उपयोग किया जाए जिससे विकास से सम्बन्धितसभी बातें सहीं अर्थो में उन तक पहुंच सके और अर्थ का अनर्थ न हो।

आज के अत्याधुनिक युग में इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। किस भी देश या समाज में इनके योगदान एवं प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता है। लोगों के द्वारा परम्परागत संचार माध्यमों की अपेक्षा इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों द्वारा सूचनाओं के प्रसार की तीव्रता के कारण इनके उपयोग में लगातार वृद्धि होती जा रही है। जहां परम्परागत संचार माध्यमों से सूचनाओं के आदान–प्रदान आदि में काफी समय लगता था। आज इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के द्वारा यह कार्य अति कम समय में ही सम्पन्न हो जा रहा है। आज इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के अभाव में कोई भी समाज अपना सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विकास नहीं कर सकता है, चाहे लोकतंत्र हो या राजतंत्र दोनों प्रकार के समाज के लिए सामाजिक व्यवस्था और कानून व्यवस्था बनाए रखने के साथ–साथ विकास की गति को बनाएं रखने में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का महत्वपूर्ण स्थान है।

कम्यूनिकेशन, संचार या सम्प्रेषण शब्द लैटिन भाषा के कम्युनिकेटर से ग्रहण किया गया है। इसका शाब्दिक अर्थ है– सामान्य बनाना, आपस में बांटना, दूसरों को समझना, बताना इत्यादि। सामान्यतया संचार या सम्प्रेषण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से माना जाता है जिसके माध्यम से विकसित या सम्भावित नवीन तथ्यों की जानकारी दूरवर्ती लोगों को प्राप्त होती है। संचार या सम्प्रेषण पर ही सामाजिक अन्तःक्रिया आधारित है। सामान्यतया दृष्टि, निर्देशन, भाव–भंगिमा, मुख–मुद्रा, भाषा एवं प्रतिकात्मक चिन्ह सम्प्रेषण के माध्यम है।

समाज वैज्ञानिको द्वारा जनसंचार को जटिल विषय माना गया है। सन् 1950 तक मनोविज्ञान और समाज विज्ञान में इस पर कम ही कार्य हुए है। 1948 में स्टाउट और बाल्डविन ने इस विषय के महत्व की ओर आकर्षित हुए किन्तु शेनान के सूचना सिद्धान्त से सम्बन्धित सन् 1948 के प्रपत्र के पूर्व इस विषय पर कोई प्रयोग नही किए गए थे व्यवस्थित रूप से बर्ट एवं रिक्स ने मानव समस्याओं के सन्दर्भ में ही संचार की प्रासंगिकता पर सर्वप्रथम शोध कार्य किया।

भारत में भी समाज वैज्ञानिकों ने ग्रामीण क्षेत्रों में संचार पर उल्लेखनीय शोध कार्य किया। **विरेन्द्र कुमार दुबे, के0एन0 पाण्डेय (1992)ने** कृषि विकास सम्बन्धित योजनाओं के विश्लेषण के साथ–साथ ग्रामीण व्यक्ति को प्रशिक्षण प्रदान करने में सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया।
एम.आई. खान, कौशल किशोरने एशिया के देशों में संचालित विकास कार्यक्रमों मेंसंचार माध्यमों की उपलब्धता सम्बन्धी प्रमाणों का मूल्यांकनअपने शोध प्रविधियों में भी सम्मिलित किया हैं। उनकी ये

मान्यता है कि संचार माध्यमों की प्रभावशीलता की अध्ययन के लिए पाश्चात्य देशों में विकसित शोध प्रविधि उपयुक्त नहीं है। इन्होनें सामाजिक सर्वेक्षण, जीवन विधि, प्रश्नावली और प्रयोगात्मक विधि की उन सीमाओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया है जो एशिया के देशों में विशिष्ट सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश के कारण उत्पन्न हुई। उनकी ये मान्यता है कि सर्वेक्षण प्रणाली परम्परागत देशों के सांस्कृतिक परिवेश को स्पष्ट करने में सफल नहीं है। संचार में प्रमुख समस्या केवल नवीन माध्यमों के प्रयोग की नहीं, वरन् परम्परागत संस्कृति से उनके अभियोजन की भी है। अतः संचार के माध्यमों और विकास कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता और सहभागिता के विश्लेषण के लिए ऐसी उपर्युक्त शोध पद्धति का विकास किया जाना चाहिए। जो एशिया के परम्परागत सांस्कृतिक मान्यताओं के अनुकूल हो।

डी.पी.सक्सेना **(1990)-**ने इस बात पर बल दिया है कि संचार माध्यमों को जनता की आशा आकांक्षा और अभिरूचियों में इस प्रकार का परिवर्तन करना चाहिए जिससे विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों को भलिभाँति लागू किया जा सके। उन्होंने संचार के वृहद साधनों को अपेक्षाकृत अधिक संरचित करने तथा संचार के ऐसे अभिकर्ताओं को अधिक प्रशिक्षित करने पर बल दिया। जो क्षेत्रीय स्तर पर आमने–सामने की परिस्थिति में नवीन संदेशों का सम्प्रेषण कर सके।

वाई. वी. दामले **(1969)** ने सात गॉवों में आधुनिक विचारों एवं नवीन ज्ञान के संरचना का अध्ययन किया है। इस अध्ययन के द्वारा राष्ट्रीय राजनीतिक गतिविधियाँ, राष्ट्रीय नीति, विश्व की राजनीतिक घटनाओं, जाति और धर्म के सम्बन्ध में नवीन दृष्टिकोण मनोरंजन के नवीन तरीकों का अध्ययन किया गया हैं अध्ययन में संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण को अपनाया गया है। अध्ययन के द्वारा यह ज्ञात हुआ कि सूचनादाता शिक्षित थे। वे अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में संचार के साधनों के प्रति जागरूक थे। अध्ययन से ये भी ज्ञात हुआ कि नवीन विचार और तरीके मुख्य रूप से संरचात्मक और परम्परागत बाधाओं के द्वारा प्रतिबन्धित है। आधुनिकीकरण के मार्ग में परम्परागत संरचना बाधा उत्पन्न करती है।

धर्मवीर (**1990)** ने भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में संचार माध्यमों की भूमिका का विश्लेषण किया है। उनके अध्ययन से यह पता चलता है कि संचार के वृहद साधनों से सम्पर्क की जितनी अधिक वृद्धि होती है। राजनीतिक जागरूकता का स्तर भी उतना ही उच्च होता है, उनके अध्ययन के द्वारा संचार माध्यमों के नकारात्मक प्रभाव पर भी प्रकाश पड़ता हे जो नागरिक राजनीतिक रूप से अधिक जागरूक है उनकी राजनीतिक सहभागिता सीमित हो जाती है।

समाजशास्त्री श्यामाचरण दूबे (**1964)** ने यह पाया है कि ग्रामीण क्षेत्र में सूचना सम्प्रेषण के स्वतंत्र तरीके हैं। प्रारम्भ में संचार के वृहद् साधनों के द्वारा सूचनाएँ ग्रामीण समुदाय के अभिजात्य वर्ग तक पहुँचती है। तत्पश्चात गॉव के सामान्य व्यक्तियों को हस्तान्तरित होती है। नवीन प्रशासनिक संरचना एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं ने सूचना सम्प्रेषण को ग्रामीण परिवेश में नवीन स्वरूप प्रदान किया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रति जागरूकता का अध्ययन करते हुए ये विदित हुआ कि ग्रामीण व्यक्ति किन कार्यक्रमों को सरकारी कार्यक्रम मानता है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के केवल कुछ ही पक्षों की जानकारी उन्हें प्राप्त थी।

ग्रामीण विकास में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का सकारात्मक प्रभाव

ग्रामीण विकास में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रभाव दिखाई पडते है। परन्तु सकारात्मक प्रभाव अधिक दिखाई पड रहा है जो इस प्रकार है –

कृषि बाजार के लिए ई–प्लेटफार्म कृषि उत्पादों को एक बाजार से दूसरे बाजार तक पहुँचाने, मंडी के अनेक शुल्कों से उत्पादकों को बचाने और उचित मूल्य पर उपभोक्ता के लिए कृषि वस्तुओं को मुहैया कराने के लिए सरकार ने ऑनलाइन मंच पर राष्ट्रीय कृषि बाजार विकसित करने का एक समयबद्ध कार्यक्रम तैयार किया है। इसके लिए एक ई–प्लेटफार्म तैयार किया गया है, जो सितम्बर, 2016 तक 250 से ज्यादा कृषि मंडियोंतक फैल जाएगा और मार्च, 2018 तक कुल 585 मंडियों में ऐसी प्रणाली विकसित कर दी जाएगी। केन्द्र ने राज्य की मंडियों को आपस में जोडने के लिए राज्य सरकारों से भी ई–बाजार प्लेटफार्म शुरू करने का आग्रह किया है, ताकि किसान किसी भी मंडी में अपनी पैदावार बेच सके। इसके लिए केन्द्रीय कृषि विभाग ने राज्यों को मुफ्त सॉफ्टवेयर भी उपलब्ध कराया है। इससे कृषि पैदावारों के लिए कुशल व्यापार प्रणाली बनेगी, जो क्रेता और विक्रेता के मौजूदा स्थानों से भी लेन–देन में सक्षम होगी। इससे मौजूदा बाजार का विस्तार होगा और भविष्य में उन स्थानों से भी लेन–देन किया जा सकेगा, जहाँ बाजार मौजूद नहीं हैं वहाँ क्रय व विक्रय के लिए एक नया वितरण चैनल अस्तित्व में आयेगा, जो कृषि पैदावार में बेहतर मूल्य हासिल करने के नतीजे के रूप में सामने आयेगा और बडे पैमाने पर किसानों को लाभ मिलेगा।

ग्रामीण विकास में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों से ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की उपलब्धता तेजी से बढती दिखाई पड़ रही है, जिससे साक्षरता में वृद्धि हो रही है जनगणना 2011, के अनुसार साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है जिनमें पुरूष साक्षरता दर 80.09 प्रतिशत है तथा महला साक्षरता दर 64.60 प्रतिशत है। वही ग्रामीण साक्षरता 70 प्रतिशत है जबकि नगरीय साक्षरता का प्रतिशत 86 हैं।

ग्रामीण विकास में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों से स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का निदान भी हो रहा है। इंटरनेट, मोबाईल आदि के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र के लोग भी बीमारी के उपचार के लिए उचित दवाईयों का सही जानकारी प्राप्त कर पा रहे है, जिससे उनके स्वास्थ्य में निरन्तर सुधार देखने को मिल रहा है, इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों से ग्रामीण विकास में ई–बैंकिंग की भी मुख्य भूमिका दिखाई पड़ रही है। वर्तमान समय में लगभग प्रत्येक गाँवों में ई–बैंकिंग तथा ए.टी.एम. की सुविधा मुहैया करायी जा रही है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को आसानी से मुद्राएँ प्राप्त हो जा रही है।

ग्रामीण क्षेत्रों में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की तेजी से वृद्धि होने के कारण ग्रामीण जीवन शैली में भी परिवर्तन हुआ है वर्तमान समय में ग्रामीण क्षेत्रों के लोग भी इंटरनेट व मोबाईल के कारण अपने रहन–सहन, खान–पान, पोशाक इत्यादि में नगरीय क्षेत्र के लोगों की तरह परिर्वतन कर रहें हैं।

ग्रामीण विकास में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का नकारात्मक प्रभाव

ग्रामीण विकास में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का जहां एक तरफ सकारात्मक प्रभाव दिखाई दे रहा है वही दूसरी तरफ इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई पड़ते हैं जो इस प्रकार है–

ग्रामीण समाज एक सरल समाज है जिसमें प्रत्यक्ष या प्राथमिक सम्बन्ध पाये जाते है किन्तु आज वैश्वीकरण के युग में सोशल मीडिया के प्रभाव से शिथिलता या औपचारिक सम्बन्ध की प्रधानता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगा है।

इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के कारण साइबर अपराध का भी जन्म हो रहा है जो देश की बहुत गम्भीर समस्या है। इनमें कम्प्यूटर आधारित प्रलेखों के साथ हेर–फेर, कम्प्यूटर सिस्टम को अपने नियंत्रण में ले लेना, अश्लील सामाग्री का प्रकाशन इत्यादि प्रमुख है। वर्तमान समय में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के उपकरणों के अत्याधिक प्रयोग से समय का दुरुपयोग भी हो रहा है। आज के युग

में व्यक्ति को मोबाईल चलाने की उत्सुकता प्रबल होती जा रही है, व्यक्ति का न चाहते हुए भी अधिक से अधिक समय मोबाईल फोन चलाने में व्यतीत हो रहा है। इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के उपकरणों के अत्यधिक प्रयोग से व्यक्ति के स्वास्थ्य में गिरावट देखने को मिल रहा है जैसे मोबाईल, कम्प्यूटर अधिक समय तक चलाने से आँखों में समस्या, इयरफोन लगाकर सुनने से कानों की समस्या इत्यादि व्याधिकीय शरीर को प्रभावित कर रहे हैं।

ग्रामीण समाज एक सरल समाज है इनकी जीवनशैली सादा व सरल होती है किन्तु वर्तमान समय में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के नये–नये उपकरणों के फलस्वरूप इनकी जीवनशैली भी जटिलतम होती जा रही है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक संचार माध्यमों का ग्रामीण जीवन पर दोहरा प्रभाव दिखलाई पड़ रहा है। जिनमें सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव मुख्य है वर्तमान समय में डाक, टेलीफोन, रेडियों, दूरदर्शन, डी.टी.एच., फैक्स, कम्प्यूटर, ई–मेल, मोबाईल इत्यादि संचार माध्यम, ग्रामीण समाज के सुगम संचार हेतु सहायक है। इन माध्यमों का ग्रामीण विकास में सकारात्मक प्रभाव अत्यधिक दिखाई पड़ रहा है। आज कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोजगारी से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान आसानी से उपलब्ध हो जा रहा है, जिसका उपयोग ग्रामीण जनता भी कर रही है। जनसंचार के युग में आई नयी तकनीक ने सूचना पाने के कई ऐसे संसाधनों को जन्म दिया है जो ग्रामीण विकास में अपनी अहम भूमिका निभा रहे है, इन्होनें ग्रामीण सामाजिक जीवन के साथ–साथ व्यावहारिक व आर्थिक जीवन को भी बदल कर रख दिया है। देश के प्रत्येक गाँवों में इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का तेजी से विकास होता दिखलायी पड़ रहा है। अब यहाँ के लोगों में भी चीजों को देखने, समझने व कार्य करने के दृष्टिकोण में पूर्व से बदलावदिखाई पड रहा है। ज्ञान प्रबन्धन प्रक्रिया के लिए विश्वस्त सूचनाओं, जानकारियों और सेवाओं से लैस डिजिटल इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के प्रयोग ने अभी तक कठिन समझे जाने वाले ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक बदलाव कर दिये है। वेब पोर्टलों, मोबाईल फोन, सोशल मीडिया और विशेषज्ञ प्रणाली से युक्त आधुनिक आई.सी.टी. उपकरणों ने जानकारी के आदान–प्रदान को प्रक्रिया केन्द्रित बने रहने के स्थान पर 'लोककेन्द्रित' बना दिया है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची (Bibliography):

1. भानावत, संजीव(2000), पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम् यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, जयपुर।
2. कोठारी, गुलाब(1995),पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञापन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर।
3. पंकज, विष्णु(1991),भाषायी पत्रकारिता और जनसंचार, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
4. दूबे, वी.के. एवंपाण्डेय, के एन.(1992),कृषि एवं ग्राम विकास में वीडियों एवं दूरदर्शन, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ।
5. दक्षिण, प्रवीण(1980), जनमाध्यम और पत्रकारिता भाग–1, अजीत प्रिंटर्स,कौशलपुरी, कानपुर।
6. पारख,जवरीमल्ल(1996),जन संचार माध्यमों का सामाजिक चरित्र, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, दिल्ली।

7. मोहन, हरि (1997),रेडियों और दूरदर्शन पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. ठाकुर, विजय ,चमत्कारिक प्रगति का संसार : दूर संचार, योजना,मई 2005।
9. झाड़वाल, एस. एम., भारत में दूरसंचार का विकास : नई पहल, रोजगार समाचार, 4–10 जून 2005
10. Dharamvir (1990), Political Behavior and Mass India : the Indian experience

पर्यावरण संरक्षण में जनजातीय महिलाओं की भूमिका

झारखण्ड के संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

पाटला कुमारी
नेट उत्तीर्ण, शोध छात्रा
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश

इतिहास गवाह है कि भारतीय महिलाएँ पुरूषों से किसी भी क्षेत्र में कम नही हैं, वे सदैव पुरूषों से आगे रही हैं तो पर्यावरण संरक्षण में भारतीय महिलाएँ पीछे कैसे रह सकती हैं। महिलाओं द्वारा विभिन्न पर्व–त्योहारों के माध्यम से पेड़–पौधों, जल–स्रोतों की पूजा अर्चना करना इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अगर हम सामाजिक प्रथाओं, रीति–रिवाजों को देखें तो यह पता चलता है कि प्राचीन काल से ही महिलाएँ पर्यावरण संरक्षण के प्रति हमेशा जागरूक रही हैं। अगर हम जनजातियों की बात करें तो इनकीलोक–संस्कृति और परंपरा महान होती है। इन लोगों में पर्यावरण वन–संरक्षण करने की प्रवृति प्रबल होती है। उनका व्यावसायिक रिश्ता सिर्फ प्रकृति से लेने या देने तक ही नहीं रहता बल्कि ऐसा रिश्ता रहा है जिसके दायरे में जल, जंगल, जमीन के अलावा जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, आकाश–पाताल, चाँद–सूरज अपना जीवन जीते हैं।जनजाति और जंगल देश के पर्यावरण के प्रमुख आधार हैं क्योंकि जंगल जहाँ है जनजातीय समुदाय भी वहीं है।

झारखण्ड की संस्कृति में ऐसे बहुत सारे पर्व–त्योहार हैं जो प्रकृति के संरक्षण के लिए मनाए जाते हैं जैसे सरहुल, कर्मा, सोहराई आदि। उनके नामकरण, शादी–ब्याह, गोत्र बंधन जैसे उत्सव भी प्रकृति से प्रेरित होते हैं। यहाँ की जनजातीय महिलाएँ प्रकृति पर निर्भर हैं। जनजातीय समाज में भोजन जुटाने की जिम्मेदारी, जंगलों से जलावन के लिए लकड़ी लाने, इकट्ठा करने की जिम्मेवारी महिलाओं की ही होती है। साथ ही पीने के पानी की व्यवस्था करना, पशुओं के लिए चारा की व्यवस्था करना भी उन्हीं के जिम्मे में होती है।अतः जनजातीय महिलाएँ प्रकृति से ज्यादा करीब होती हैं। देश में ऐसे कई पर्यावरण–संरक्षण आंदोलन हुए हैं खासकर वन–आंदोलन जिसमें महिलाओं ने ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मुख्य शब्दः– पर्यावरण संरक्षण, जनजाती, महिला,जंगल, प्रकृति।

पर्यावरण का अर्थ उस वातावरण से है, जिससे सम्पूर्ण जगत या जीव जगत घिरा हुआ है। वह हर चीज जो हम अपने जीवन जीने के लिए इस्तेमाल करते हैं वो सभी पर्यावरण के अंतर्गत आता है। जैसे कि हवा, पानी, भूमि, सूर्य की रोशनी, पेड़–पौधे, जंगल, पशु–पक्षी, नदी, पहाड़ और सभी प्राकृतिक चीजें। सिर्फ पृथ्वी ही एक ऐसी जगह है जहाँ पुरे ब्रह्माण्ड मे जीवन संभव है और पृथ्वी पर जीवन जारी रखने के लिए हमें हमारे पर्यावरण की मौलिकता को बनाए रखने की आवश्यकता है। संरक्षण एक ऐसा प्रयास हे जिससे प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण शोषण परिलक्षण तथा नवीनीकरण सम्भव है। पर्यावरण की सुरक्षा करना ही पर्यावरण संरक्षण है। मानव एवं प्रकृति का संबंध आदिकाल से रहा है।

आज के दौर में मानव अनेकों पर्यावरणीय समस्याओं से जूझ रहा है। जल संकट, जलवायु परिवर्त्तन, बाढ़, सूखा इत्यादि समस्याएँ दिनों दिन बढ़ती जा रही है। पर्यावरण और महिला का संबंध अटूट है, क्योंकि दोनो ही पोषण करनेवाले होते हैं।इतिहास गवाह है कि भारतीय महिलाएँ पुरूषों से किसी भी क्षेत्र में कम नही हैं, वे सदैव पुरूषों से आगे रही हैं तो पर्यावरण संरक्षण में भारतीय महिलाएँ पीछे कैसे रह सकती हैं। महिलाओं द्वारा विभिन्न पर्व–त्योहारों के माध्यम से पेड़–पौधों, जल–स्रोतों की पूजा अर्चना करना इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अगर हम सामाजिक प्रथाओं, रीति–रिवाजों को देखें तो यह पता चलता है कि प्राचीन काल से ही महिलाएँ पर्यावरण संरक्षण के प्रति हमेशा जागरूक रही हैं।

प्रस्तुत शोध आलेख मैंने झारखण्ड के संदर्भ में प्रस्तुत किया है।इस अध्ययन के लिए द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। तथ्यों के संकलन हेतु मैंने पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं, प्रलेखों, प्रतिवेदन, वेबसाइट आदि का प्रयोग किया है।

इस आलेख में जनजातीय महिलाओं के पर्यावरण संरक्षण में भूमिका को दिखाया गया है कि किस प्रकार जनजातीय महिलाओं का प्रकृति से निकटतम संबंध होता है और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा, वनों की रक्षा के लिए वे कुछ भी कर सकती हैं।

भारतीय इतिहास में कई पर्यावरण संरक्षण आंदोलन हुए हैं जिसकी प्रणेता महिलाएँ की रही हैं। इसमें चिपको आंदोलन, खेजड़ली, नर्मदा बचाओ, नवधान्या आंदोलन कुछ प्रमुख आंदोलन है।झारखण्ड की संस्कृति में ऐसे बहुत सारे पर्व त्योहार हैं जो प्रकृति के संरक्षण के लिए मनाए जाते हैं जैसे सरहुल, कर्मा, सोहराई आदि। उनके नामकरण, शादी–ब्याह, गोत्र बंधन जैसे उत्सव भी प्रकृति से प्रेरित होते हैं। यहाँ की जनजातीय महिलाएँ प्रकृति पर निर्भर हैं। जनजातीय समाज में भोजन जुटाने की जिम्मेदारी, जंगलों से जलावन के लिए लकड़ी लाने, इकट्ठा करने की जिम्मेवारी महिलाओं की ही होती है। साथ ही पीने के पानी की व्यवस्था करना, पशुओं के लिए चारा की व्यवस्था करना भी उन्हीं के जिम्मे में होती है। अतः जनजातीय महिलाएँ प्रकृति से ज्यादा नजदीक होती हैं। देश में ऐसे कई पर्यावरण–संरक्षण आंदोलन हुए हैं खासकर वन–आंदोलन जिसमें महिलाओं ने ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।मानव जाति के इतिहास में इस तरह का पर्यावरणीय अस्तित्व संकट पूरे विश्व के सामने पहले कभी नहीं आया था जितना आज अनुभव किया जा रहा है।

प्रकृति सहनशील व गंभीर, मूक जरूर है परंतु हद से ज्यादा वह छेड़छाड़ पसंद नहीं करती है। उसकी सहनशीलता को उसकी कमजोरी समझ हम बरसों से उसका शोषण कर रहे हैं। परंतु वह लाचार नहीं अपना गुस्सा वह कहीं भयंकर बाढ़ तो कहीं सूखा, कभी भूकंप के रूप में प्रकट कर रही हैं।

झारखण्ड क्षेत्र में वृक्षों की पूजा की परम्परा मानव सभ्यता के विकास के साथ ही चली आ रही है। यहाँ की जनजातियाँ आस्था से प्रकृतिपूजक होते हैं। वे किसी आकृति वाली मूर्ति की पूजा नहीं करते बल्कि प्रकृति की पूजा करते हैं। इस क्षेत्र के करम या करमा पर्यावरण की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण त्योहार है।

वर्त्तमान समय में पर्यावरण क्षरण के निम्न कारण हैं–

1.प्राकृतिक संसाधनों का दोहनः– जनसंख्या में लगातार वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति उपयोग में वृद्धि के फलस्वरूप संसाधनों पर दबाव के कारण उनका ह्रास हुआ है। वातावरण हमें कई प्रकार से मदद करने के लिए प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध कराता है। परंतु मानव बहुत ही स्वार्थी प्राणी है। वह अपने

दैनिक आवश्यकताओं की वृद्धि के लिए जाने अनजाने प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण उपयोग करता है। इन दोषपूर्ण उपयोगों के कारण ही समस्त प्राकृतिक संसाधनों की बर्बादी होती है।

2. वनों का ह्रास और पर्यावरण क्षरण– वन संसाधन हमारे पर्यावरण सन्तुलन का महत्वपूर्ण घटक है। वन राष्ट्र की अमूल्य संपत्ति होती है। वनों से ही काष्ठ उद्योग व अन्य कई उद्योगों को कच्चा माल मिलता है। ये जल और मिट्टी जैसे महत्वपूर्ण संसाधनों का संरक्षण करते हैं। आज मानव अपने विकास के लिए वनों का अत्यधिक विनाश किया है जिसके परिणामस्वरूप सूखा, बाढ़, भूमि की उर्वरा शक्ति में ह्रास, स्वस्थ पर्यावरण के लिए खतरा बन गया है।

3. जनसंख्या वृद्धि और पर्यावरण क्षरण– किसी भी देश में पर्यावरण के क्षरण का प्राथमिक कारण जनसंख्या का तीव्र विकास है। जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण पृथ्वी पर हर उस गतिविधि में तेजी आई है जिससे पर्यावरण को नुकसान पहुंचता है। जनसंख्या वृद्धि के कारण शहरों का विस्तार, नगरों में वृद्धि और कृषि पर दबाव बढ़ता जा रहा है। अंततः इसके कारण जैविक संतुलन नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रहा है।

4. औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण क्षरण– विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति के कारण मानव की आर्थिक व औद्योगिक गतिविधियां बहुत अधिक बढ़ गई हैं। औद्योगिक विकास के कारण औद्योगिक कचरे, जहरीली गैस, प्रदूषित पानी, धुआं, राख जैसी समस्याएँ भी पैदा हुई। पयावरण को नुकसान पहंचाने में उपरोक्त सभी की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है।

5. आधुनिक उत्पादन तकनीक एवं पर्यावरण क्षरण– आधुनिक उत्पादन तकनीक को वर्तमान पर्यावरण संकट का परिणाम कहा जाय तो कोई गलत बात नहं होगी। रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों के प्रयोग से जल एवं जमीन दोनों प्रदूषित हुए हैं। इससे मिट्टी की भौतिक–रासायनिक संरचना एवं तत्वों में भी कमी हुई है तथा विषैले तत्वों में वृद्धि हुई है।

6. नगरीकरण और पर्यावरण क्षरण– नगरीकरण प्रवृति के कारण भी लगातार प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता ही जा रहा है, साथ ही कृषि योग्य जमीन में भी कमी आ गई है। नगरीकरण के कारण विकसित एवं विकासशील दोनों तरह के देशों के पर्यावरण को नुकसान पहुंच रहा है।

पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं की भूमिका–

पर्यावरण को स्वच्छ बनाने, उसके संरक्षण में महिलाओं की भूमिका अहम हो सकती है क्योंकि महिला स्वयं संवेदनशील, समझदार और स्नेह प्रेम की मूर्ति होती है। अगर वह माँ, बेटी या पत्नी के रूप में अपने बच्चों, भाइयों, पिताओं व पतियों की सबसे बड़ी हितचिंतक हो सकती है तो फिर प्रकृति के शोषण के पीड़ा को भी अच्छी तरह समझ सकती है। इसलिए वह पर्यावरण संरक्षण के संस्कार हर व्यक्ति को आसानी से दे सकती है। पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली के कारण पुरूषों को ही सारे अधिरकार और नियंत्रण करने की शक्ति प्राप्त है, उन्हें ही निर्णय का अधिकार जबकि घर का सारा काम महिलायें ही करती हैं । घर की सारी जिम्मेदारा उन्हीं की होती हैं, चाहे वह रसोई के लिए इंधन हो, पानी की व्यवस्था हो या फिर पशुओं के लिए चारा की व्यवस्था। इनका वनों से सीधा संबंध होता है, अतः वनों के विनाश का सीधा असर महिलाओं पर पड़ता है।

पर्यावरण संरक्षण का सबसे बड़ा उदाहरण चिपको आंदोलन है, जिसमें जंगल बचाने में महिलाओं की भूमिका थी। चिपको आंदोलन ने पर्यावरण संरक्षण खासकर वन संरक्षण की दिशा में एक नयी चेतना पैदा की है। यह आंदोलन उतरप्रदेश के चमोली जिले में 1973 ई॰ में प्रारम्भ हुआ। पर्यावरण और परिस्थितिकी संतुलन में महिलाओं की जोरदार उपस्थिति थी। यह लड़ाई थी जिसने देश में वन कानूनों को नई दिशा दी और साथ ही पर्यावरण की चिंता को राष्ट्रीय अंतराष्ट्रीय विषय बनाया।

यह आंदोलन पूर्णतया महिलाओं से जुड़ा हे और इस आंदोलन ने यह सिद्ध कर दिया कि जो काम पुरूष नहीं कर सकते उसे महिलायें कर सकती हैं। इस आंदोलन की शुरूआत प्रसिद्ध पर्यावरणविद् सुन्दरलाल बहुगुणा, चण्डी प्रसाद भटट तथा श्रीमती गौरा देवी के नेतुत्व में हुई।

नर्मदा बचाओ आंदोलन को लेकर इधर मेधा पाटकर भी काफी चर्चित रही हैं। पर्यावरण संरक्षण में इनकी सक्रिय भूमिका को देखते हुए ही इन्हें अन्तराष्ट्रीय ग्रीन रिबन पर्यावरण पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। सुश्री वंदना शिवा भी इसी तरह की जुझारू पर्यावरण संरक्षक कार्यकर्ता है। पर्यावरण संरक्षण में इनके कार्यों को देखतें हुए ही उन्हें वर्ष 1993 के राइट लिवली हुड अन्तराष्ट्रीय पर्यावरण पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

जंगल और जनजातीय महिला

विश्व में जनजातियों की पहचान जल–जंगल–जमीन पर्यावरण के जीवंत संबंध से है। जनजातियों के लिए जंगल सिर्फ पेड़–पौधे ही नहीं है, बल्कि जनजातीय समुदाय के इतिहास, परंपरा, भाषा, संस्कृति पहचान के साथ आजीविका और स्वस्थ जीवन का मूल आधार भी है। जनजाती और जंगल देश के पर्यावरण के प्रमुख आधार हैं क्योंकि जंगल जहाँ है जनजातीय समुदाय भी वहीं है। उनके सारे पर्व–त्योहार जैसे– सरहुल, कर्मा आदि जंगलों पर ही आधारित हैं। इनके नाम भी जंगल से ही निकले हैं जैसे केरकेट्टा–चिड़ियाँ, मिंज–मछली, कच्छप–कछुवा, सोरेन–पत्थर से निकले उपनाम हैं। ये सिर्फ परंपरा ही नहीं बल्कि परंपरा से जुड़े लोक व्यवहार है।

जनजातीय महिलायें अपने और परिवार के जीवन के आधार के लिए प्रकृति पर निर्भर रहती हैं। इस समाज में परिवार के लिए भोजन जुटाने की जिम्मेवारी लड़कियों को ही होती है इसके अलावा उन्हें फल–फूल जंगल से लाने होते हैं। उन्हें जलावन, जड़ी–बुटी, पत्ती, चारा, खाद आदि के लिए जंगल पर ही निभ्रर रहना होता है। चूँकि पुरूष खेती कार्य के अलावा बाहर के कामों को संभालते हैं इसलिए महिलाएँ ही घर के सारे कार्य को संभालती हैं। घर के लिए पीने वाले पानी की व्यवस्था, जानवरों को चराने, फसल बोने से लेकर काटने की जिम्मेवारी लड़कियों को ही होती है। इस वजह से उनका प्रकृति से गहरा लगाव होता है। पुरूष के तुलना में महिलायें पेड़–पौधों, पशु को ज्यादा अच्छे से देखभाल कर सकती हैं।ज्ञात हो कि झारखण्ड के वनों की बाल अवस्था में जलावन के लिए कटाई भी अभी तक महिलाएँ हीं करती हैं, जिन्हें यहाँ मथबोझिया के रूप में जाना जाता है। इससे पूर्व भी झारखण्ड के जनजातीय समुदाय सखुआ, करम, महुआ इत्यादि वृक्षों की धार्मिक महत्त्व होने की वजह से कटाई से परहेज करते हैं।

झारखण्ड के जंगलों में अवैधपातन को रोकने के लिए ग्रामीण एवं जंगलों के आस–पास निवास करनेवाली महिलाओं में वृक्षों को भाई मानने की सोच विकसित हुई है। वे वृक्षों को राखी की जगह लाल कपड़े/ सूता बाँध उनका सम्मान करती हैं। झारखण्ड के जंगल बहुल क्षेत्र–कोडरमा, गिरीडीह, हजारीबाग, विष्णुगढ़ एवं अब राँची में वृक्षों की रक्षा बन्धन की पहल यहाँ की ग्रामीण महिलाओं ने शुरू की।

वास्तव में पर्यावरण के प्रति अज्ञानता ही मनुष्य का बहुत बड़ा नुकसान कर रहा है। आज बिना सोचे–समझे मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का जो शोषण कर रहा है, यह अंततः मानव को सचेत भी करने लगा है। आधुनिक भौतिकवादी संस्कृति और सभ्यता के विकास के कारण देश की सम्पदा में वृद्धि हुई है। इसके साथ ही औद्योगिकरण, नगरीकरण का आगमन हुआ जिसके फलस्वरूप बड़े–बड़े मिल, कारखाने, फैक्टरी स्थापित किये गए । विज्ञान का प्रवेश कृषि कार्य में हुआ जिसके कारण वैज्ञानिक ढंग से कृषि कार्य में वृद्धि हुआ है। इन सभी ने मिलकर आज पर्यावरण को बुरी तरह से

नष्ट एवं दुषित किया है। हम प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अपने स्वाथों के अनुसार कर रहे। इससे जहाँ एक ओर पर्यावरण असंतुलित हुआ है वहीं दूसरी ओर प्रदूषण की समस्या भी बढ़ गई है।

भारत की संस्कृति में ऐसे बहुत सारे त्योहार पर्व हैं जो प्रकृति के संरक्षण के लिए मनाए जाते हैं जैसे सरहुल,कर्मा, सोहराई, गोवर्धन पूजा आदि। यहाँ की जनजातीयों ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा को बचाकर रखनें का भरसक प्रयास किया है । प्रकृति से संबंधित झारखण्ड के सरहुल पर्व मानव सभ्यता, संस्कृति एवं पर्यावरण की रीढ़ है। अतः हमें अपनी इस संस्कृति को लेकर ही विकास का रास्ता तय करना चाहिए। मानव जिन पारंपरिक गतिविधियों में रहते आए हैं आज वे विलुप्त होते जा रहे हैं। वे इन्हीं संसाधनों का प्रयोग भावी पीढ़ी को ध्यान में रखकर इस्तेमाल करते थे परंतु आधुनिकता के कारण जब से यह पारंपरिक ज्ञान हमारी जीवनशैली से लुप्त हुआ है तब से हमारे सामने विभिन्न पर्यावरणीय समस्याएँ खड़ी हो गई है। करमा तथा सरहुल दो ऐसे त्योहार हैं जिसमें प्रकृति की उपासना होती है, इससे जनजातियों में प्रकृति के प्रति आदर, सम्मान, लगाव का भाव दिखाई देता है।

जनजातीय संस्कृति में प्राकृतिक शक्तियों की ही पूजा होती है, जो विभिन्न पर्व के अवसर पर विभिन्न नामों से जाना जाता है। इनके अधिकांश पर्व–त्योहार वन एवं कृषि से संबंधित होते हैं। उनकी संस्कृति 'पर्यावरण, पेड़ों व बाघों ' की रक्षा में विश्वास करती है। ये समुदाय शांतिपूर्ण, मेलजोल से रहते हैं परंतु जब भी कोई उनके प्राकृतिक संसाधनों को नुकसान पहुँचाता है तो वे चुप नहीं बैठते, अपने हक के लिए, अधिकारों व जमीन के लिए लड़ते हैं।पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, चाँद–तारे और सूर्य के सान्निध्य के बिना जनजाती की कल्पना भी नहीं की जा सकती। नामकरण के बाद गोत्र के महत्त्व के पीछे भी प्रकृति की प्रेरणा विद्यमान रहती है। आदिवासी जन जीवन में सखुए के पेड़ों की अति महत्ता है। सखुए की पत्ती, डाली, लकड़ी आदि के बिना आदिवासी जन जीवन की कल्पना करना असम्भव है। जनजातीय लोक जीवन वन–संस्कृति से संबंधित है। इसलिए उनके जितने भी पर्व–त्योहार हैं उनमें ज्यादातर प्रकृति की पूजा, पेड़–पौधो की पूजा देखने को मिलती है।

पर्यावरण संरक्षण के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास– पर्यावरण संरक्षण की दिशा में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों का शुभारंभ सन् 1967 ई० में हुआ। इसके बाद सन् 1972 ई० में 5 जून से 12 जून तक स्टॉकहोम में पर्यावरण संबंधी मानव पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया। इसी सम्मेलन में प्रति वर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाने का संकल्प लिया गया। जून 1992 में रियो–डि–जनेरियो (ब्राजील) में पर्यावरण से संबंधित पृथ्वी सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए।

पर्यावरण संरक्षण के राष्ट्रीय प्रयास– हमारे देश की ओर से पर्यावरण सुधार को महत्व देने का कार्य स्टॉकहोम सम्मेलन सन् 1972 के बाद से ही प्रारम्भ हो गया था। भारत सरकार ने सन् 1980 में पृथक पर्यावरण विभाग गठित किया। सन् 1986 में पर्यावरण सुधार और संरक्षण का आवश्यकता को देखते हुए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम बनाया गया। सन् 1985 में पर्यावरण वानिकी तथा वन्य जीवन विभाग का गठन किसा गया जिनक मुख्य उद्देश्य पर्यावरण संबंधी अनुसंधानों को बढ़ावा देना है। सरकार द्वारा सन् 1992–93 में पर्यावरण के प्रति लोगों में जागृति पैदा करने में पर्यावरण की रक्षा में उनकी सहभागिता हासिल करने के लिए पर्यावरण्र वाहिनी योजना प्रारम्भ की गई। यह येजना देश के 183 चुने हुए जिलों में कार्य कर रही है।

झारखण्ड में संरक्षण के प्रयास–झारखण्ड में पर्यावरण संरक्षण के संबंध में जन चेतना को देखा जाता है। यहाँ पेड़ों को सुरक्षा प्रदान की जा रही है। झारखण्ड सरकार नक वृहद् वृक्षारोपण कार्यक्रम का

शुभारम्भ किया जिसमें एक माह के अंदर 2 करोड़ पेड़ लगाने की योजना है। इससे जलवायु को स्वच्छ और बेहतर बनाया जा सकता है। सरकार ने जन–वन योजना की शुरूआत की जिसके तहत राज्य सरकार रैयती जमीन में पौधारोपण हेतू अनुदान देती है।

निष्कर्षतः

आधुनिक मानव ने अपने आर्थिक, भौतिक एवं सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्तरोत्तर उन्नति हेतु पर्यावरण में इतना परिवर्त्तन ला दिया है कि इससे पर्यावरण का संतुलन काफी बिगड़ गया है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव जनजातीय महिलाओं पर पड़ा है क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों से उनका सीधा एवं गहरा संबंध है। अतः इसके नियंत्रण में उनकी भूमिका की आवश्यकता प्रथम है। पर्यावरण को स्वच्छ बनाने, उसके संरक्षण में महिलाओं की भूमिका अहम हो सकती है क्योंकि महिला स्वयं संवेदनशील, समझदार और स्नेह प्रेम की मूर्ति होती है। पर्यावरण संरक्षण एक ऐसा मुद्दा जिसे अकेले हल नहीं किया जा सकता, इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपना योगदान देना चाहिए। जनजातीय समाज सदियों से इसके संरक्षण के लिए प्रयासरत है।यदि हम सभी अपने दैनिक जीवन में छोटी–छोटी बातों का ध्यान रख कर कार्य करें तो इस समस्या को कम किया जा सकता है।

संदर्भ सूचीः–

1.सिन्हा, अनुज कुमार (2019),*झारखण्ड के आदिवासी पहचान का संकट*,,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

2.रघुवंशी, कमलेश, (2013), *और कितना वक्त चाहिए झारखण्ड को*?,,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

3.पाठक, डा० गणेश कुमार,(1995),*पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं की भूमिका*,, योजना।

4.प्रसाद, कमला, (2007), *पर्यावरणीय शिक्षा,* राजेश पब्लिकेशन, दिल्ली।

5.शर्मा, वी के (2012),*पर्यावरण की चुनौतियां : समस्याएं तथा समाधान*, आर्या पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

6. सिंह, सविन्द्र (1991), *पर्यावरण भूगोल,* प्रयाग पुस्तक भवन।

https://geographyandyou.com

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 17, July-Dec. 2020 ISSN : 2249-7331

भारतीय संस्कृति के तत्वों की विवेचना

डा0 प्रमिला वर्मा
असि0 प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र,
महामाया राजकीय महाविद्यालय,
धनूपुर, हण्डिया, इलाहाबाद

भारतीय संस्कृति में बाह्य एवं दृश्यमान विषमताओं के मध्य एक सारभूत मौलिक एकता है जिसकी कोई भी उपेक्षा नहीं कर सकता। वर्णाश्रम धर्म, संस्कार, पुरूषार्थ आदि सभी समाजों के लिए आदर्श स्वरूप रहे, जिन्हें स्थापित एवं प्राप्त के निमित न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र प्रयास हुए हैं। वर्णाश्रम धर्म तो हिन्दू संस्कृति का आधार–स्तम्भ है। भारत में विश्व के प्रायः सभी धर्मों के लोग निवास करते हैं। सृष्टि की संरचना में विभिन्नता प्रकृति का सौन्दर्य है, पर एक ही प्रजाति में एकरूपता सृष्टि की देन है। भारतीय संस्कृति से हमारा अभिप्राय उस संस्कृति से है जिसका जन्म भारत में हुआ और जिसका प्रसार भारत के अन्यान्य देशों में हुआ जिसके परिणाम स्वरूप वृहत्तर भारत का प्राचीन स्वप्न मूर्तरूप ले सका। प्राचीनता की दृष्टि से भारतीय संस्कृति विश्व की आदि सभ्यताओं में एक है। समाज के अस्तित्व से ही संस्कृति का सापेक्ष सम्बन्ध है। कोई व्यक्ति विशेष संस्कृति की स्थापना नहीं कर सकता। क्योंकि संस्कृति किसी भी समाज की चतुर्मुखी विकास प्रगति का द्योतक है। संस्कृति का अभिन्न सम्बन्ध मूल्यों, आदर्शों और परम्पराओं से होता है। संस्कृति के द्वारा ही किसी देश की पारम्परिक, भौतिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों का पता चलता है। संस्कृति के विकास के साथ–साथ ही मूल्यों का भी विकास होता है। संस्कृति में व्यवहारिकता नहीं होती तो उसमें निरन्तरता तथा समायोजन की प्रवृति न होती। संस्कृति में गति होती है, वह विकासशील या प्रगतिशील है।

भारतीय संस्कृति अपनी अनेक मूलभूत विशेषताओं के साथ वह संस्कृति है जो वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, महाकाव्यों, पुराणों, सूत्रग्रन्थों एवं स्मृतियों में संरक्षित शाश्वत मानवीय मूल्यों के आधार पर पुष्पित एवं पल्लवित हुई। भारतीय संस्कृति त्याग, तपस्या से आत्म निग्रह, आत्म–संयम, आत्मत्याग, उदारता, दानशीलता, जनकल्याण आदि गुणों से सम्पन्न है।

विद्वानों ने भारतीय सस्कृति में धर्म की प्रधानता स्वीकार करते हुए इसे आध्यात्मिक संस्कृति कहा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति की कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो विश्व के अन्य देशों की संस्कृतियों में दृष्टिगत नहीं होती। अपने विभिन्न तत्वों के कारण ही भारतीय संस्कृति ने विश्व के देशों में अपनी महत्ता को बनाये रखा है। इन्हें हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रख सकते हैं :–

1. **<u>प्राचीनता</u>** – भारतीय संस्कृति का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। प्रागैतिहासिक उपकरणों से यह पता चलता है कि विश्व के अन्य भागों के साथ ही भारत में भी मानव संस्कृति का प्रारम्भ हुआ था। सैन्धव सभ्यता की खोज से भारतीय संस्कृति की प्राचीनता बढ़ी। भारतीय संस्कृति में प्राचीनता होने के साथ ही साथ निरन्तरता एवं चिरस्थायिता भी है। शताब्दियों के भारतीय संस्कृति की भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन, सामाजिक आचार–विचार आज भी उतने मूल्यवान बने हुए हैं जितने प्राचीन समय में थे। यह निरन्तरता भारतीय संस्कृति की अपनी वस्तु है।

2. **आध्यात्मिक तथा धार्मिक सहिष्णुता** – भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता अथवा धार्मिकता का अपना एक विशिष्ट स्थान है। प्राचीन समाज में पुरूषार्थों का विधान एवं आश्रम व्यवस्था का प्रतिपादन मनुष्य की आध्यात्मिक साधना के ही प्रतीक है जो धर्म, अर्थ काम रूप में जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति मोक्ष में सहायक है। इसमें धर्म को प्रमुखता दी गयी है जो जीवन की सभी अवस्थाओं में व्यक्ति की क्रियाओं को प्रेरित एवं प्रभावित करता है। भारतीय संस्कृति धार्मिक विषयों में सहिष्णुता का उपदेश देती है। भारतीय मनीषा ने ईश्वर को एक सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान आदि मानते हुए विभिन्न धर्मों एवं मतों को उस ईश्वर तक पहुंचने के भिन्न–भिन्न मार्ग बताया है। ज्ञानी लोग उसका विविध प्रकार से वर्णन करते हैं। धार्मिक सहिष्णुता की भावना मनुष्य को सभी धर्मों का आदर करना सिखाता है। ऐसा करने पर सभी सम्प्रदाय बहुश्रुत होगे तथा संसार का कल्याण होगा। प्राचीन इतिहास के स्वर्णयुग गुप्तकाल में सर्वत्र सहिष्णुता देखने को मिलती है।

3. **वर्णाश्रम धर्म**– प्राचीन भारत में स्थापित वर्ण व्यवस्था उन शाश्वत मूल्यों में से एक है जिनकी स्थापना भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए की गयी थी। प्राचीन भारत में वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में चार वर्णों का विभाजन किया गया था, जिसका आधार हिन्दू समाज में व्याप्त सहयोग सामंजस्य और सहकारिता की भावना थी। इस भावना के अनुरूप जन्म से ही व्यक्ति के क्रिया–कलापों तथा उसकी सामाजिक स्थिति का निर्णय हो जाता है। वर्णाश्रम धर्म वर्ण और आश्रम दो प्रकार के विभागों पर आश्रित है। भारतीय सामाजिक जीवन चार आश्रमों में विभक्त है। ये आश्रम इस प्रकार है :–

(1) ब्रह्मचर्याश्रम

(2) गृहस्थाश्रम

(3) वानप्रस्थाश्रम

(4) संन्याश्रम

अतः स्पष्ट है कि अपने बाह्य सामाजिक रूप में हिन्दू धर्म के दो अंग है – (1) वर्ण व्यवस्था (2) आश्रम व्यवस्था।

भारतीय वर्णव्यवस्था के कारण ही हमारी संस्कृति एवं धर्म सांस्कृतिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए परस्पर सहयोग करते थे तथा वर्णों की व्यवस्था से श्रम विभाजन एवं विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। इससे सामाजिक गतिशीलता के सिद्धान्त को मजबूती मिली। जहाँ तक आश्रम व्यवस्था की बात है वह सम्पूर्ण विश्व के चिन्तन के इतिहास को भारतीय संस्कृति की एक विलक्षण देन है। वर्णव्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था, वस्तुतः दोनों में कोई तात्विक भेद नहीं क्योंकि समष्टि के हित में व्यक्ति का हित सम्मिलित है।

4. **हिन्दू संस्कृति और संस्कृत भाषा** – भारत में कई प्रकार की बोलियाँ बोली जाती है पर धार्मिक भाषा केवल एक है और धार्मिक साहित्य भी केवल एक है जिसे हिन्दू धर्म के सभी अनुयायी सामाजिक स्थिति और मत की दृष्टि से कितने भी भिन्न हो, मानते हैं और श्रद्धा से पूजते हैं वह भाषा है संस्कृत साहित्य। वही वेद विश्वजनीय ज्ञान का एक मात्र कोश है।

हिन्दू धर्म दर्शन, व्यवहारशास्त्र और गाथा शास्त्र एक मात्र ऐसा दर्पण है जिसमें हिन्दुओं के सभी मत मतान्तर, विचार, रीति–रिवाज और प्रथाएँ हैं।

5. **ग्रहणशीलता तथा समन्वयवादिता–** भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है उसकी ग्रहणशीलता जिसके अंदर प्रतिकूल परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाकर अपने में समाहित कर लेने की अद्‌भूत शक्ति है। भारतीय संस्कृति समन्वयवादी होने के कारण ही प्राचीन समय से ही अनन्त भेदों के बीच वैचारिक एकता तथा समानता की स्वीकृति की बात स्वीकार करती है। भारतीय व्याख्याकारों ने मानव जीवन के चारों पुरूषार्थों के विधान द्वारा भौतिक एवं आध्यात्मिक सुखों के बीच समन्वय स्थापित करने का सुन्दर प्रयास किया है जो सभी के लिए अनुकरणीय है। भारतीय समाज की वर्णाश्रम व्यवस्था भी विभिन्न–वर्गों के बीच समन्वय स्थापित करने के उद्‌देश्य से बनाई गयी थी। समन्वय की यह प्रवृति विश्व के अन्य संस्कृति में दिखायी नहीं देती।

6. **सर्वांगीणता तथा सार्वभौमिकता –** भारतीय संस्कृति में सार्वभौमिकता मिलती है। इसमें अपनी उन्नति के साथ ही साथ समस्त विश्व के कल्याण की कामना की गयी है। वैदिक काल से ही भारतीय मनीषियों ने सम्पूर्ण विश्व को एक मानकर विश्वबन्धुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे उदात्त सिद्धांतों का प्रथम उद्‌घोष करते हुए सार्वभौमिकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने न केवल मानव जाति अपितु प्राणीमात्र के कल्याण की चिन्ता व्यक्त किया।

सार्वभौमिकता की भावना भारतीय साहित्य एवं दर्शन में दिखाई देती है। भारतीय संस्कृति का तादात्मय विश्वजनीन है। भारतीय संस्कृति ने समयान्तर के साथ ही संपूर्ण देश को अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता के साथ सभी को एकसूत्र में ऐसा बांधा कि देश और संस्कृति को अभिन्न समझी जाने लगी और इस प्रकार एक दूसरे के समनार्थक हो गयी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में गतिशीलता होते हुए भी सनातनता स्थापित रही है। मृत्योपरान्त हम अन्य वस्तुओं के साथ–साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी भावी पीढ़ी के लिए छोड़ जाते हैं। संस्कृति ही मानव की दिशा व दशा का बोध कराती है। संस्कृति मानव जीवन का आधारभूत लक्षण है। इसमे मानव के समस्त गुण निहित है। संस्कृति के गुणों से वशीभूत होकर ही मनुष्य उन क्रियाओं को करता है जो उसे ज्ञान–विज्ञान, समाज, धर्म, साहित्य तथा दर्शन और चिन्तन की ओर अग्रसर करती है। हमारी भारतीय संस्कृति अनेक तत्वों का सम्मिश्रण का परिणाम है। हमारी संस्कृति में भौतिकता तथा आध्यात्मिकता का समन्वय होता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि संचित ज्ञान और चिन्तन का भण्डार ही संस्कृति है। संस्कृति जीवनयापन का एक ढंग है तथा हम अपने जीवन में जो संस्कार जमा करते हैं वह हमारी संस्कृति का अंश बन जाता है। संस्कृति का स्वरूप आदर्शयुक्त है, इसमें मानव की भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति का समन्वय होता है। संस्कृति के द्वारा अनेकता में एकता की स्थापना होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा – श्री गुलाब राय, प्रकाशक–ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2018
2. प्राचीन भारतीय संस्कृति – डॉ0 वी0एन0 लूनिया, प्रकाशक–लक्ष्मीनारायण अग्रवाल,

आगरा प्रथम संस्करण–1852, अट्ठारहवां संशोधित संस्करण–2004

3. संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह 'दिनकर', प्रकाशक–लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, तीसरा संस्करण–2016
4. भारत का इतिहास तथा संस्कृति – के0सी0 श्रीवास्तव, प्रकाशक–यूनाइटेड बुक डिपो, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद 2011–12
5. भारतीय संस्कृति – डॉ0 शिव शंकर श्रीवास्तव, प्रकाशक–शारदा पुस्तक भवन, पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2015, छठा संस्करण–2018
6. भारतीय संस्कृति – एच0एन0 दूबे प्रकाश–शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद नवीन संस्करण–2012
7. भारतीय कला और संस्कृति – डॉ0 भगवती लाल पुरोहित, प्रकाश–शिवालिक प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, द्वितीय संस्करण–2006

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 17, July-Dec. 2020 ISSN : 2249-7331

गुरिल्ले का आत्मकथन और ग्लोबल समाज

डॉ. विजय कुमार रंजन
असिस्टेंट प्रोफेसर,हिंदी विभाग
म.गां. काशी विद्यापीठ,वाराणसी।

यह दुनिया अलग–अलग संस्कृतियों का एक परिवार है,हर एक संस्कृति की अपनी अलग विशेषता है। यही विशेषता सभी संस्कृतियों को अपनी एक विशिष्ठ पहचान उपलब्ध कराती है। लेकिन आज के दौर में अपनी सभ्यता,संस्कृति और उसकी विशेषता को बचाए रख पाना सबसे बड़ी चुनौती है। भूमंडलीकरण की पूंजीवादी संरचना ने पूरी दुनिया कि सांस्कृतिक संरचना को प्रभावित किया है। भूमंडलीकृत व्यवस्था में बिना किसी बाधा के सारी दुनिया पर विकसित देशों की अर्थव्यवस्था को थोपा जाता है, जिसका परिणाम समर्थों द्वारा असमर्थों का शोषण ही है। भूमंडलीकरण के दौर में ही पेटेंट कानून सामने आया, जिसमें किसी उत्पाद पर एक व्यक्ति व कंपनी विशेष का अधिकार होने लगा। इस प्रकार ज्ञान एवं तकनीक पर यह जो एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह की वर्चस्वता है, यह विकास करने की स्वतंत्रता की प्रक्रिया का सूचक नहीं, बल्कि यह व्यापार और शोषण का प्रतीक है। भूमंडलीकरण के समर्थक पूरे विश्व को समरूप देखना चाहते हैं। दुनिया में सब लोगों के खानपान, रहन–सहन, और उपभोग के तरीके एक समान हो जाएं ताकि सारी दुनिया के लोग एक जैसी चीज का उपयोग करने लगे और उनका उत्पादन बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा किया जाकर सारी दुनिया के उत्पादन, वितरण एवं उपभोग को नियंत्रित किया जा सके, और इस तरह न केवल सभी देशों की अर्थव्यवस्था को, बल्कि राजनीति एवं संस्कृति को भी अपने अधीन किया जा सके। इस प्रकार भूमंडलीकरण से नव–पूंजीवादी व्यवस्था और नव–साम्राज्यवादी व्यवस्था को मजबूत समर्थन मिला है। संपन्न इकाइयां तो उत्पादन करें और शेष लोग उपभोग करें। इस व्यवस्था में अधिक उत्पादन कर सकने में सक्षम मशीनें तकनीकी के द्वारा उत्पादन के एवं शोध के अनुभवों को कुछ लोगों तक ही सीमित रखा जाता है, और शेष लोग उत्पादन के अनुभव से वंचित ही बने रहते हैं। वे न केवल बाजार के वस्तुओं को खरीदने की क्षमता नहीं बढा पाते हैं बल्कि उत्पादन की सहज प्रक्रिया एवं निजी विकास की प्रक्रिया से भी वंचित हो जाते हैं। छोटे उद्योग एवं कुटीर उद्योगों की तबाही ने व्यक्ति के निजी श्रम को सीमांत की तरफ धकेल दिया है। इससे विश्व के आम लोगों में उत्पादनशीलता, सर्जनशीलता अवरुद्ध हो रही है, फलसवरूप इस धरती के शोषितो के विकास की संभावनाएं धूमिल होती जा रही हैं अब जिस प्रकार टी.वी. के सामने अधिकतर लोग कलाओं के मात्र उपभोग बनकर रह गए हैं तथा लोक–कला के सृजन में उनकी खुद की भागीदारी समाप्त होती जा रही है। यह स्थिति अन्य सर्जन एवं उत्पादन के क्षेत्रों में हो रही है । इस प्रकार मानव विकास की जो प्रक्रिया मशीनीकरण एवं पूंजीवाद से प्रभावित हुई थी, वह भूमंडलीकरण के द्वारा और अधिक सर्जन– शून्यता का रूप लेती जा रही है । स्थानीय कलाओ, संस्कृतियों एवं जीवन–शैलियों के धीरे–धीरे नष्ट होने तथा विविधता के स्थान पर एकरूपता के स्थापित होने की स्थितियां भूमंडलीकरण ने और अधिक ढंग से पैदा कर दी है। अतः भूमंडलीकरण के द्वारा आम आदमी की सर्जनशीलता के नष्ट होते जाने के साथ ही एक नया सांस्कृतिक संकट उपस्थित होने जा रहा है।

भारत में नब्बे के बाद भूमंडलीकरण,उदारीकरण की नीतियों ने पूरी सामाजिक संरचना को छिन्न–भिन्न किया। पूंजीवादी विकास के माडल ने समाज,संस्कृति और साहित्य को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। नब्बे के बाद की हिंदी कविता में इन नीतियों के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर बुलंद हुआ। विमर्श केन्द्रित साहित्य विशेषकर आदिवासी साहित्य में अपने जर,जंगल,जमीन और आदिवासी अस्मिता कि रक्षा हेतु प्रतिबद्धता दिखाई देती है– "समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श की शुरुआत हमे नब्बे के बाद से माननी चाहिए। भारत सरकार की नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण–उत्पीडऩ की प्रक्रिया तेज की, इसलिए उसका प्रतिरोध भी मुखर हुआ। शोषण और उसके प्रतिरोध का स्वरूप राष्ट्रीय था, इसलिए प्रतिरोध से निकली रचनात्मक ऊर्जा का स्वरूप भी राष्ट्रीय था। निष्कर्षतः नब्बे के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोधस्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी साहित्य है।"[1] इसमें आदिवासी और गैर–आदिवासी रचनाकार बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। इस साहित्य का भूगोल, समाज, भाषा, संदर्भ शेष साहित्य से उसी तरह पृथक है जैसे स्वयं आदिवासी समाज, और यही अलगाव इसकी मुख्य विशेषता है। यह आदिवासी साहित्य की रचना–प्रक्रिया के निर्माण का दौर है। आदिवासी साहित्य, आदिवासी अस्मिता व अस्तित्व के संकटों और उसके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्मनिर्णय'के अधिकार के साथ खड़ी होती है। हालांकि यह समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श का आरंभिक दौर है लेकिन इसके बावजूद यह सुखद है कि इसमें अभी तक 'स्वानुभूति बनाम सहानुभूति'जैसी गैरजरूरी बहसें केन्द्र से दूर परिधि के इर्द–गिर्द ही घूम रही हैं। आखिर स्वानुभूति या अनुभूति की प्रामाणिकता को केंद्रीय महत्व मिले भी क्यों ? निश्चय ही अनुभूति की प्रामाणिकता की जगह अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता अधिक महत्वपूर्ण है और होनी भी चाहिए। यह सच है कि लंबे अनुभव, निकट संपर्क और संवेदनशीलता के बिना प्रामाणिक अभिव्यक्ति संभव नहीं है, खासकर आदिवासी संदर्भ में, लेकिन इसके बावजूद स्वानुभूति को एकमात्र आधार नहीं बनाया जा सकता। नब्बे के बाद की कविता में आए परिवर्तन को हम युवा कवि अनुज लुगुन की लम्बी कविता 'गुरिल्ले का आत्मकथन' के माध्यम से समझेंगे।

आदिवासी साहित्य के उन्नयन में अनुज लुगुन ने बतौर युवा कवि अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज की है। अनुज एक आदिवासी कवि होने के साथ–साथ उसके जीवन सरोकार से गहरे स्तर पर जुड़े हैं। यह एक लम्बी कविता है, जिसमें इतिहास लेखन की मुख्य परंपरा तथा पूँजीवादी विकास के माडल पर प्रश्न है। इस कविता में स्मृतियों एवं मौखिक परम्परा को लिखित परम्परा में विस्तृत किया गया है। यह कविता आदिवासियत एवं सहजीविता के पक्ष को उद्घाटित करते हुए, नव–साम्राज्यवादी विकास के खोखले माडल के समक्ष 'यह धरती केवल मनुष्यों के लिए नहीं है'का विकल्प/चुनौती प्रस्तुत करती है। इस कविता में गंभीर चिंतन के कई सूत्र मौजूद हैं। कविता संघर्ष की परम्परा को भविष्योन्मुखी आधार प्रदान करती है। यह 'भूमंडलीकरण' एवं 'एक ध्रुवीय विश्व'का विरोध करती है। इस कविता का मुख्य उद्देश्य आदिवासी अस्मिता–अस्तित्व से जुड़े, आदिवासियत के जीवन राग, दर्शन तथा सहजीविता का सार्वभौमीकरण करना है।

आज के अस्मितामूलक विमर्श में आदिवासी स्वर एक साथ विरोध और संघर्ष दोनों ही परिस्थितियों का सामना कर रहा है। एक तरफ वह पूंजीवादी, नव–साम्राज्यवादी, बाजारवादी और भूमंडलीकरण

की अप्राकृतिक नीतियों का खुलकर विरोध कर रहा है तो दूसरी तरफ अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत भी है। पूंजीवादी मॉडल प्रकृति का संरक्षक नहीं हो सकता, वह इसकी मूल संरचना को विकृत करके ही आगे बढ़ सकता है। इसी मूल संरचना की हिफाजत आदिवासियों की अस्मिता–अस्तित्व से जुड़ी है। आदिवासी समाज की सहजीविता कभी भी इसकी संरचना और उससे जुड़े जीवन की बुनियादी जरूरतों को बेचने एवं नष्ट किए जाने का समर्थक नहीं है।

अनुज लुगन की कविता का केन्द्रीय भाव 'आदिवासियत राग' का स्वर है। कवि ने यह जो तान अपनी कविताओं में छेड़ी है, उसकी झंकार हमारे समकालीन समय और समाज को झंकृत करती है। अनुज की ही कविता 'आकृतियाँ' से उदधृत यह पंक्तियाँ– 'हम गीत गाते हुए लड़ सकते हैं,और लड़ते हुए गीत गा सकते हैं' उनके वैचारिक दर्शन का पक्ष बयाँ करती हैं। अनुज को कविता में 'स्व' से जुड़े इतिहास, संस्कृति तथा दर्शन को सशक्त भावभूमि पर 'प्रोजेक्ट' करने की ललक विद्यमान है। 'मिथक' में भी कवि ने सम्भावनाओं की तलाश की है, खुद के 'इयत्ता' की।

अनुज की कविता में आदिवासी राग का स्वाभाविक पक्ष बड़ी आत्मीयता एवं संजीदगी से प्रस्तुत हुआ है। समस्त प्राकृतिक उपादानों को आदिमराग में समेटने की कोशिश सहज है। इंसानी संवेदना से दूर होते जा रहे ये समस्त प्राकृतिक उपादान, अनुज की कविताओं में सशक्त 'आइडेन्टिटी' के आदिवासी जीवन शैली में रचे बसे प्रतीत होते हैं। आदिवासियत के झण्डे को बुलंद करना कवि का लक्ष्य नहीं है। कवि सिर्फ उन्हीं की ओर ध्यान केन्द्रित कराना चाहता है, जहाँ ग्लोबल मनुष्य की अमानवीयता का साम्राज्यवादी ढाँचा उन्हें उनके जल, जंगल, जमीन और जनों को छोड़ने के लिए विवश करता है। उनका अस्तित्व संकट में है। 'गुरिल्ले का आत्मकथन' कविता में कवि का संकेत इन्हीं बातों की तरफ है–

"मैं एक कविता की/खोज में हूँ/जो ढूढ निकाले/युद्ध के मैदान में/ लैंड–माइन्स, बारूदी सुरंग/ और छुपे हुए हमलावरों को/एक बच्चे की तरह/ जो अपने मृत माँ–पिता/ और स्वजनों के साथ ही/उस कविता के लिए रो रहा है।/जो उसे वहाँ से बाहर निकाले।"[2]

'गुरिल्ले का आत्मकथन' कविता में पूँजीवादी राष्ट्र की साम्राज्यवादी नीति के शिकार आदिवासियों के जल, जंगल,जमीन एवं स्वजनों के विलुप्तप्राय अस्तित्व का यथातथ्य वर्णन है। कविता में 'गुरिल्ला' प्रतीक है। यह आत्मकथन एक गुरिल्ले का है जो पहले 'आदिवासी' था। अस्तित्व पर गहराते संकट ने उस समुदाय को संघर्ष के लिए बाध्य किया है। इसी संघर्षजन्य परिस्थिति का परिणाम है 'आदिवासी' का गुरिल्ले में तब्दील होना। आदिवासी विकसित होते पूँजीवादी साम्राज्यवाद के सम्मुख अपने अर्थविहीन, स्वतः स्फूर्त अस्तित्व को कायम रख पाने में अक्षम है।

तेजी से विलुप्त हो रहे स्वजनों की तलाश में यह समुदाय भ्रमित है कि यह कौन सी परिस्थिति है जिसमें वे जी रहे हैं।सब कुछ इतनी तीव्र गति से कैसे परिवर्तित हो रहा है? एक–एक करके प्रत्येक चीजें कहाँ विलीन होती जा रही हैं?

"इससे हास्यास्पद/और क्या हो सकता है कि/ मेरे घर की मुर्गियां खो गयी/सुगर दबड़ों सहित गायब हैं/हल जोतते बैल या तो/ खेत में समा गए हैं। या खेत दब गएहोंगे गोबर से/नदी अपना रास्ता बदलकर/ गाँव में घुस गई होगी या, पूरा गाँव / गाँव सहित नदी में डूब गया है।मैं अपने स्वजनों को खोजते हुए/ भटकता हूँ और अखबारवालों को विज्ञापन मिलने लगते हैं पहले से कई गुना।"[3]

आदिवासी जीवन से गहरे स्तर तक जुड़े होने के कारण अनुज की कविता में यह चिंता स्वाभाविक रूप से परिलक्षित होती है कि प्रेम की कौन सी परिभाषा गढ़े जो उन्हें समझ आए। हमें प्रेम है हर

एक उस चीज से जिसे हम महसूसते हैं। कविता में यह संकेत है कि इस समुदाय के प्रेम की सार्वभौम सत्ता को वे नहीं समझेंगे। हमारा प्रेम उनके लिए हास्यास्पद है। बाँटकर देखना उनका स्थायी भाव है।

"मैं किसी राष्ट्राध्यक्ष को पत्र नहीं लिखूंगा/ वह मेरा दोस्त नहीं है और न ही/वह मेरी प्रेम कहानी के बारे में कुछ जानता है/ यह उसके लिए भी एक चुटकुला ही होगा/ कि मुझे अपनी मुर्गियों से प्रेम है/ जंगली लतरों, फलों और पहाड़ों से प्रेम है/मैं सुअरों, बैलों, भैंसों और गिलहरियों के अचानक खो जाने से सदमे में हूँ/ वह इन सबको अलग–अलग कर देखेगा/वह गाय के जीवन को अलग बाँट देगा/ और वह हिंसा का कारण बन जाएगी/ वह 'गंगा' कहेगा और दूसरी नदियाँ सड़ जाएँगी/गिलहरी, जंगली भैंसे, हाथियों और हमें/ बाँटकर बताएगा जीवन की परिभाषा/ जबकि हम इनके साथ ही/बेहतर दुनिया बसाना चाहते हैं।"[4]

नब्बे के बाद वैचारिक स्तर पर कई बड़े परिवर्तन हुए।इनमे सबसे बड़ा बदलाव धर्म के उग्र और हिंसात्मक स्वरुप का अस्तित्व में आना है। धर्म कि सीमाएं मनुष्येतर लोक को भी समाहित करने से नहीं पीछे हटी। इसका उदहारण इस कविता में 'गाय' और 'गंगा' के बिम्ब को उभारकर दर्ज हुआ है।

अनुज की कविता 'गुरिल्ले का आत्मकथन' का वैचारिक पक्ष स्पष्ट है। संघर्ष और हिंसा आदिवासियत की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है। परिस्थितिजन्य है सबकुछ। अपनी संवेदना और भोलेपन को तिलांजली देकर धीरे–धीरे गुरिल्ले में तब्दील होते जाना आदिवासियत की अनैच्छिक प्रक्रिया है। आदिवासियत के राग का गीत वे प्रत्येक परिस्थिति में चाहे जीवन हो या संघर्ष गुनगुनाते रहना चाहते हैं । प्रकृति भी इसी में अपना स्वर मिलाती है –

"एक दिन एक चिड़ी /मुझसे आकर पूछी/तुम अपने कंधे पर बन्दूक टाँगे/ रात दिन भूखे प्यासे / जंगली पगडंडियों में भटकते हो/ क्या तुम्हें इस तरह खुशी मिलती है। जैसे मैं खुश रहती हूँ गीत गाते हुए, तब मैंने उसे हल्की मुस्कान दी। और कहा/ मैं तुम्हारा ही तो गीत गाता हूँ।"[5]

साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ अपने जीवन के संगीत को लयबद्ध करने की जिजीविषा अनुज की कविता में विद्यमान है –

"मैं हर वक्त/घिरा होता हूं मृत्यु से/ तब भी गीत गाता हूँ/मुझे गीत गाता देख/ उलझन में पड़ जाती है मृत्यु/वह सोचने लगती है कि/मुझे निशाना बनाए या मेरे गीत को।"[6]

प्रेमरूपी संगीत का यही वातावरण कविता को एक नई भाव भूमि पर खड़ा करता है। आदिवासी लोक की परिधि में यही संगीतमयी वातावरण अपनी समस्त उर्जा के साथ आदिवासियत को आत्म–प्रकाश से भर देता है।

यही परिधि एक नए 'लोक' की सृष्टि करती है, जो आत्म–स्फूर्त है। यहाँ सभी सहजीवी हैं, जो एक दूसरे के लिए संगीत गुनगुनाते हैं –

"ओ ! फूलों पर लोटती हुई तितली/ओ ! जुगनुओं की दादी/ देखो, छोटी चिड़ी ने/ अभी अभी एक बच्चे को जन्म दिया है। क्या हमें उसके लिए गीत नहीं गाना चाहिए...?"[7]

इस 'लोक' के 'विकास' की वास्तविकता बस यही है। कविता का उद्देश्य इसी संवेदना' को ध्वनित करना है।एक युवा कवि के रूप में अनुज लुगुन ने अपने समय कि नब्ज को बखूबी समझा है।अपनी कविता में आदिवासी दर्शन और अस्मिता कि बात करते हुए वे उन खतरों से भी बाखबर है,जिनका

उद्देश्य केवल आदिवासी संस्कृति को चोट पहुँचाना नहीं है।नव–उपनिवेशवादी,साम्राज्यवादी तथा पूंजीवादी विकास के माडल की सच्चाई और उसके खोखलेपन को अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता से चुनौती देती हुई अनुज कि यह कविता एक प्रभावी 'आत्मकथन' है।

संदर्भ सूची–

1- https%@@www-forwardpress-in@2016@04@tribal&literature & challenges &and&possibilities&hindi@

2- संपा–आरती,समय के साखी,अक्टूबर–नवम्बर–2014–पृष्ठ–108

3- वही,पृष्ठ–109

4- वही,पृष्ठ–109

5- वही,पृष्ठ–110

6- वही,पृष्ठ–111

7- वही,पृष्ठ–112

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 17, July-Dec. 2020 ISSN : 2249-7331

सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन के धर्म दर्शन में पूर्व व पाश्चात्य का समन्वय

डॉ0 रचना सिन्हा
एसो0 प्रोफेसर
के0एस0साकेत पी0जी0 कालेज
अयोध्या

सारांश :

विज्ञान और प्रौद्योगिकी से मनुष्य अपने लिये भौतिक संसाधन इकट्ठा कर सकता है परन्तु अपनी सहज अधोगामी वृत्तियों को ऊँचा उठाना, विज्ञान के द्वारा साध्य नहीं है। भौतिक सुख साधनों के विकास की धुन में, प्रौद्योगिक चमत्कारों की चकाचौंध में मनुष्य ने अपने आन्तरिक स्वरूप को भुल दिया है। जिस विज्ञान से हमारा जीवन अधिक सुखमय होना चाहिए था, वही मानव के अस्तित्व के लिए खतरा बनता जा रहा है। और धर्म के नाम पर विश्व में जितना अनर्थ हुआ है वह वर्णन से परे है।

इसका कारण सिर्फ धर्म के मर्म को न समझकर कर्मकाण्डों, रीतिरिवाजों को ही धर्म मानना है। डॉ0 राधाकृष्णन का मानना था कि भौतिक समृद्धि के साथ–साथ गहरे नैतिक बोध का पूर्ण समन्वय ही जीवन को दिव्य व आनन्दपूर्ण बना सकता है। इसी कारण उन्होंने पश्चिमी दर्शन और भारतीय धार्मिक परम्परा में जो गहरा अन्तर्विरोध दिखाई पड़ता है उसे समाप्त करने का प्रयास किया और पश्चिम के वैज्ञानिक दृष्टिकोण और पूर्व के आध्यात्मिक दृष्टिकोण दोनों में समन्वय स्थापित करते हुए बताया कि पूर्व और पश्चिम दोनों अलग तरह की चेतना और विचार–रीतियों का प्रतिनिधित्व नहीं करते क्योंकि विज्ञान और धर्म हर संस्कृति के अंग हैं। पाश्चात्य की वैज्ञानिक और पूर्व की आध्यात्मिकता दोनों का समन्वय ही डॉ0 राधाकृष्णन के धर्मदर्शन की विशेषता है।

एक महान शिक्षक, एक महान चिन्तक एवं अध्यात्म दर्शन के महान दार्शनिक डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म चेन्नई के छोटे से गाँव तिरूपती में 5 सितम्बर, 1888 को हुआ था। शैशवावस्था से ही प्रभु भक्ति और धर्म पालन के संस्कार उन्हें माता–पिता से प्राप्त हुए। 20 वर्ष की आयु में उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय से एम0ए0 की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की और अप्रैल, 1909 में मद्रास प्रेसीडेंसी कालेज में दर्शन विभाग में अध्यापक नियुक्त हुए और वही 1916 में प्रोफेसर का पद प्राप्त किया। 1918 में मैसूर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हुए। 1921 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्ति हुयी। 1931 से 1936 तक आन्ध्र विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर आसीन हुए। भारतीय विश्वविद्यालय सुधार कमीशन के प्रधान के रूप में भी आपकी संस्तुतियाँ शिक्षा जगत में मौलिक देन के रूप में समादृत हैं। 1939 से 1948 तक की लम्बी अवधि में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। कुलपति के रूप में भी उनका आचार्य का रूप बना रहा। इसीलिए उन्होंने 1941 में विश्वविद्यालय में सभाजी राव गायकवाड़ प्रोफेसर ऑफ इण्डियन कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन का पद स्वीकार किया। उनके नाम से सम्बन्धित हेने के कारण यह पद देश में दर्शन और संस्कृति के क्षेत्र में गौरव का प्रतीक बना।[1]

मूर्धन्य दार्शनिक के रूप में प्रतिष्ठित राधाकृष्णन ने शिक्षा और राजनीति के क्षेत्रों में उच्चतम् पदों पर सफलता के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वाह किया जो अचम्भित करता है। राधाकृष्णन अपने को सुन्दर सिद्धांतों और आदर्श परिकल्पनाओं तक सीमित नहीं रखते थे। आदर्श को यथार्थ में परिवर्तित करने मे उनका विश्वास था। स्वयं उन्होंने अपनी स्थिति को स्पष्ट किया है :–

''दर्शन की मेरी अवधारणा का कुछ अर्थों में मार्क्स की अवधारणा से साम्य था। मार्क्स का उद्घोष था कि अब तक दर्शन का कार्य जीवन की व्याख्या करना था किन्तु अब समय आ गया है कि वह जीवन को परिवर्तित करें।''[2]

आदर्श को यथार्थ में परिवर्तित करने में उनका विश्वास था। जातिवाद, उपनिवेशवाद, आर्थिक शोषण इन सबके निराकरण के लिए वे संकल्पित थे।

प्रश्न उठता है कि राधाकृष्णन की अनेक उपलब्धियों और उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के किस पक्ष की आज के विश्व में सर्वाधिक प्रासंगिकता है। आधुनिक काल में एशिया के देशों पर यूरोपीय राजनीतिक सत्ता की स्थापना के चलते पाश्चात्य देशों में अपनी श्रेष्ठता के घमंड और अहम् के विचार उत्पन्न हुए। यह माना गया कि पूर्व, पूर्व है और पश्चिम, पश्चिम है दोनों छोर कभी भी नहीं मिल सकेगें। राधाकृष्णन ने एक नदीं के दो पाटों को अर्थात् पूर्ण रूपेण पृथक विचारों को जोड़ने में श्लाध्य भूमिका निभाई। पॉल आर्थर शिल्प ने पूर्व और पश्चिम के बीच जीवन्त सेतु के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण के रूप में उनका अभिनन्दन किया था।

राधाकृष्णन ने भारतीय चिन्तन को पाश्चात्य जगत में प्रतिष्ठा दिलाई और यह स्वीकार कराया कि चिन्तन के क्षेत्र में भारत की सम्पन्नता किसी भी सभ्य देश से बढ़कर है। राधाकृष्णन के लेखों और ग्रन्थों से प्रभावित होकर म्योरहेड ने 1917 में उन्हे अपनी प्रतिष्ठित ग्रन्थमाला 'लाइब्रेरी ऑफ फिलासफी' में भारतीय दर्शन पर ग्रन्थ रचना के लिए आमन्त्रित किया। डॉ0 राधाकृष्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे यूरोप और एशिया दोनों की महान परम्पराओं में निष्णात थे। वे भारत की गहन दार्शनिक परम्पराओं को पाश्चात्य दर्शन की परम्पराओं के अनुसार प्रस्तुत करते थे। यही कारण था कि पाश्चात्य जगत को भारतीय दर्शन के जटिल तथ्य भी सहज, सरल और अपने जैसे लगे। उनके रूपक तर्क और प्रयुक्त उदाहरण भारतीय विचारधारा को प्रस्तुत करते हुए भी पाश्चात्य परम्परा से जुड़े हुए थे। 1926 में आक्सफोर्ड के मैनेस्टर कालेज में इन्होंने व्याख्यान दिया और अपने विचारों की अभिव्यक्ति से, प्रस्तुति से अपार स्नेह और सम्मान प्राप्त किया।

आक्सफोर्ड में उनके अनेक भाषण प्रकाशित हुए। राधाकृष्णन ने पूर्व और पश्चिम के अन्तर को दूर करने के लिये अनेक तर्क प्रस्तुत किये। इसे मात्र एक भौगोलिक तथ्य माना।

प्रचलित धारणा है कि पूर्व और पश्चिम की अपनी–अपनी विशेषताएँ हैं जो परस्पर अत्यधिक विरोधी है और उनमें सामंजस्य बिठाना दुष्कर है। परन्तु डॉ0 राधाकृष्णन ने इन विरोधों का निराकरण अत्यन्त ही सरल शब्दों में करते हुए बताया कि अगर हम पश्चिम दृष्टिकोण को वैज्ञानिक और पूर्व को धार्मिक कहते हैं तो हमें यह समझना चाहिए कि विज्ञान और धर्म दोनों ही हर संस्कृति के अंग है। तर्क और धर्म मनुष्य के स्वभाव में इस तरह बुनी गयी दो डोरियाँ है जो अलग नहीं की जा सकती है।[3]

राधाकृष्णन की दर्शन के क्षेत्र में अपनी मौलिक उपलब्धि है। उनका दर्शन अद्वैत है और भारत की प्राचीन अद्वैतवाद परम्परा से जुड़ा होने पर भी उनकी अपनी विशिष्टता की छाप लिये है, क्योंकि इसमें पूर्व और पश्चिम का सच्चा समन्वय देखने को मिलता है। इन्होंने मानव की एकता को

माना और कहा कि मनुष्य की शारीरिक बनावट उसकी नैतिकता, आकांक्षाएँ, आध्यात्मिकता, जन्म विकास, सुख–दुःख, जीवन चक्र सब एक समान है। तो फिर यह भेद क्यों? इन्हें मानव की आत्मिक शक्ति में अपार विश्वास था। उनका मानना था कि मानव की आत्मा में इतनी शक्ति होती है कि वह विषम से विषम समस्या का हल ढूँढ सकती है, दुष्कर से दुष्कर विरोध को चूर कर सकती है। जब हमें राह दिखाने वाला कोई नहीं रहता, मार्ग में स्पष्ट प्रकाश नहीं होता, ऐसे में मनुष्य का आत्मबल, मानव आत्मा की शक्ति ही एकमात्र रह जाती है, जो मनोबल को बढ़ाते हुए सही मार्ग की ओर अग्रसर करती है। वे विज्ञान, तर्क, परम्परा सभी से ऊपर मानव की आत्मिक शक्ति को स्थान देते थे।

उन्होंने सिर्फ सिद्धांतों और आदर्शों की बात ही नहीं कही बल्कि उसे यथार्थता के धरातल पर भी उतारा। जातिवाद, क्षेत्रवाद, आर्थिक शोषण, सामाजिक भेदभाव इन सबके के निराकरण के लिए भी प्रयत्नशील थे। राधाकृष्णन ने भविष्य की नयी व्यवस्था के आधार के रूप में आध्यात्मिक आस्था की आवश्यकता को रेखांकित किया। उन्होंने कहा–

''हमें एक ऐसी धार्मिक आस्था की आवश्यकता है, जो विवेकशील हो। एक ऐसी आस्था जिसे हम बौद्धिक व्यक्तिनिष्ठा और सौन्दर्य–शास्त्रीय विश्वास के साथ अपना सके। एक बड़ी, लचीली आस्था, समूची मानव जाति के लिए जिसमें प्रत्येक जीवित धर्म अपना उल्लेखनीय योगदान कर सकता है। हमें एक ऐसी आस्था की आवश्यकता है जो समूची मानव–जाति में निष्ठा रख सके, इसके इस या उस टुकड़े पर नहीं, एक ऐसी आस्था जिसका पल्ला निरपेक्ष और प्रबुद्ध मस्तिष्क विनाश के समय भी पकड़े रह सके।[4]

डॉ0 राधाकृष्णन भारतीय धर्म के श्रेष्ठ उद्घोषक में साथ ही उन्होंने मानव जीवन में धर्म की उपयोगिता स्थापित करने के लिये प्रयास भी किया। उनका स्पष्ट रूप से मानना था कि समाज की विपन्न स्थिति से निकलना आध्यात्मिक नव जागरण के माध्यम से ही सम्भव है। इसके लिए उन्होंने धर्म दर्शन का मार्ग बतलाया जो कि सभी कालों और सभी देशों के आध्यात्मिक अनुभव का विचार करता है और वैज्ञानिकता को अपनाता है।

परन्तु अनैतिकता से भरे हुए लोग, संशय से घिरे हुए लोग उनके बताये मार्ग का अनुसरण सहज रूप से नहीं करेगें, इसका अच्छी तरह से उनको ज्ञान था। इसलिए वह धर्म को विज्ञान से जोड़कर तार्किक विवेचना से युक्त कर तब उसके मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करना चाहते थे। उनका मानना था कि बिना विज्ञान का धर्म अन्धविश्वास के सिवा और कुछ भी नहीं है, इसमें केवल भ्रम और असमंजस प्राप्त होता है। इसी तरह धर्म के बिना विज्ञान से मानव जाति के विनाश का खतरा सुनिश्चित है। विज्ञान हमारे सामने प्रकृति की सम्पदाओं को शक्तियों को उजागर करता है तो धर्म हमें मानव जाति के हित में इन सम्पदाओं और शक्तियों का सदुपयोग करने का रास्ता बताता है। उनकी इच्छा थी कि विज्ञान हमारे पाँव और धर्म आँख हो।

भौतिकता से समृद्ध होने के साथ ही साथ नैतिकता का समावेश और समन्वय जीवन को आनन्दपूर्ण बना सकता है। मानव विज्ञान का दास न बनकर अपनी आत्मा की दिव्यता और श्रेष्ठता को पहचान कर विज्ञान का उपयोग सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के लिये करें। इसके मर्म को समझने के कार ण ही राधाकृष्णन ने भारतीय और पश्चिमी दर्शन का मिलन कराया। पश्चिमी दर्शन सैद्धांतिक है। इसका आरम्भ आश्चर्य व उत्सुकता से हुआ है। वहाँ के दार्शनिक अपनी जिज्ञासा को शांत करने के उद्देश्य से विश्व, ईश्वर व आत्मा के विषय में सोचने के लिए प्रेरित हुए। उनका

उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना था जबकि भारतीय दर्शन पर धर्म की अमिट छाप होने के कारण इसका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति और आत्म संयम है। यहाँ आध्यात्मिक ज्ञान को प्रधानता दी गयी। सत्य का सैद्धांतिक विवेचन ही नहीं बल्कि उसकी अनुभूति पर बल दिया गया।[5]

डॉ0 राधाकृष्णन ने पूर्व व पश्चिम दोनों दर्शनों की विशेषताओं में मन्वय स्थापित किया। पाश्चात्य दर्शन का इहलोक सत्ता विश्वास और भारतीय दर्शन के पारलौकिक सत्ता में विश्वास दोनों को एक सूत्र में पिरोया। भारतीय धर्म और दर्शन की प्रमुख विशिष्टताओं को जैसे–धर्म, ज्ञान, योग, माया, लीला और मोक्ष के विषय में पाश्चात्य जगत में जो भ्रांतिया फैली थी, उसका निराकरण कर उन्होंने उसके सही स्वरूप को प्रस्तुत किया। भारतीयों को हिन्दू धर्म की वास्तविक आत्मा को पहचानने की सलाह दी और वर्तमान विद्यमान समस्याओं से उसको जोड़ते हुए भारत की आध्यात्मिक परम्परा के अनुकूल धार्मिक व सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाने के लिए उन्होंने कुछ सामान्य से सिद्धांतों को रखा और इसी के परिप्रेक्ष्य में कुछ सुधारों को, कुछ बदलाव को भी प्रस्तावित किया। जैसे हिन्दू धर्म के कर्मकाण्ड, संस्कार, स्त्री मुक्ति और अछूत प्रथा की समाप्ति।

भारत की वर्तमान समस्याओं और मानव संस्कृति के इतिहास को देखते हुए धर्म व दर्शन से सम्बन्धित डॉ0 राधाकृष्णन के विचार सर्वाधिक प्रासंगिक है। युद्ध हिंसा और भौतिकवादी आँधी से त्रस्त मानवता को उसके विपन्न वर्तमान और अन्धकारमय भविष्य में मार्ग–निर्देश के लिए एक पथ प्रदर्शक के रूप में डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन का वैज्ञानिकता और आध्यात्मिकता से सम्पृक्त, प्रबुद्ध और व्यावहारिक आध्यात्मिक दर्शन आशादीप बन सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1- https//www.jivaniitihasindia.com

2- Radha Krishnan S : Eastern Religions and western thought. (Publisher – Oxford University, Press, 2nd Edition) (1 May, 1997)

3. राधाकृष्णन एस : धर्म और समाज प्रकाशक : (राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 1975)
4. राधाकृष्णन एस : जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि (प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद)
5. सिन्हा हरेन्द्र प्रसाद : भारतीय दर्शन की रूपरेखा (प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली)।

****

परिवार के बदलते स्वरूप का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन
(राँची नगर के विशेष संदर्भ में)

चित्रा कुमारी
शोध छात्रा
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश

परिवार सभी सामाजिक समूहों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और व्यापक समूह है। परिवार जैसे समूह के अभाव में मानव समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। बड़े या छोटे सभी समाजों में प्रजनन और बच्चों के पालन पोषण हेतु परिवार रूपी समूह की आवश्यकता रही है, यह एक अस्थाई एवं सार्वजनिक संस्था है। परंतु हर जगह एक ही परिवार के, परिवार हो यह जरूरी नहीं है। परिवार के कई स्वरूप होते हैं, उदाहरण के लिए पश्चिमी देशों में मूल परिवार या दांपत्य परिवार की प्रधानता है। तो भारतीय गांवों में संयुक्त परिवार या विस्तृत परिवार की कुछ समाज वैज्ञानिक परिवार को समाज की बुनियादी इकाई मानते हैं। यह सही है कि समाज व्यक्तियों से बना है , पर समाज व्यक्तियों का एक समूह मात्र नहीं है। बल्कि समाज विभिन्न तरह के छोटे बड़ो समूहों से बना बड़ा समूह है। परिवार के अभाव में हम समाज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। समाजशास्त्र के जनक अगस्त काम्ट ने परिवार को समाज की एक आधारभूत इकाई कहा है। समाजशास्त्री परिवार को संस्था और समूह दोनों मानते हैं।

मुख्य बिंदु– परिवार, समूह, आधुनिक, समाज, विघटन

प्राथमिक समूह में परिवार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक संस्थाओं में यह एक आधारभूत संस्था है। सामाजिक संरचना में इस की केंद्रीय स्थिति है। इसलिए इसे प्राकृतिक संस्था भी कहा जाता है। इसकी प्रकृति सार्वभौमिक है। परिवार वह प्राथमिक समूह है, जिसमें व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्ति की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। वहीं उसके मानसिक विकास की प्रक्रिया में भी इसका सबसे अधिक महत्व है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है, कि देश में परिवार संगठित एवं व्यवस्थित रूप में अपना कार्य करते हैं। उस देश का नागरिक, अनुशासित, महान, चरित्रवान, देशभक्त बनता है। क्योंकि व्यक्ति के लिए परिवार एक महत्वपूर्ण प्राथमिक पाठशाला भी है। इसके विपरीत जिस देश में परिवार संगठित नहीं है, उस देश में सामाजिक आर्थिक विघटन शीघ्र ही आरंभ होता है। परिवार मानव जीवन के विकास के साथ जुड़ा है। यह सामाजिक विकास के प्रत्येक स्तर पर पाया जाता है। इसे विश्व के प्रति समाज में किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है, इसका अस्तित्व आदिम समाज में भी है। और पूर्व और पश्चिम में भी इस मौलिक संस्था की विशेषता है, कि व्यक्ति जन्म से ही इसका सदस्य बन जाता है और जीवन प्रदेश का सदस्य बना रहता है। परिवार उसका सामाजिकरण कर उसे समाज को समर्पित करता है। समाज में और शंख परिवर्तनों के होते हुए भी परिवार अपनी निरंतरता और स्थायित्व बनाए हुए हैं।

मैकाइवर और पेज के अनुसार परिवार एक ऐसा समूह है, जो सुनिश्चित और अस्थाई यौन संबंधों द्वारा परिभाषित किया जाता है। जो बच्चों के प्रजनन और पालन पोषण के लिए अवसर प्रदान करता है। इसमें संपाए सिविक अथवा सहायक संबंधी भी हो सकते हैं। लेकिन इसका

निर्माण पति के साथ रहने और बच्चों के साथ मिलकर एक विशिष्ट इकाई बनने से होता हैं। विभिन्न समाजो में परिवार की प्रकृति एवं स्वरूप में भिन्नता पाई जाती है। परन्तु प्रमुख विशेताएं प्रत्येक परिवार में पाई जाती है। इसके सदस्य विवाह, रक्त संबंधों या विधिवत गोद लिए जाने के कारण परस्पर जुड़े होते हैं। उनमें परस्पर स्नेह, सहानुभूति, सेवा और त्याग की भावना पाई जाती है। विभिन्न समाजों में परिवार की प्रकृति एवं स्वरूप में भिन्नता पाई जाती है। परंतु प्रमुख विशेषताएं प्रत्येक परिवार में पाई जाती है। बदलते समय के साथ साथ परिवार का स्वरूप भी बदल रहा है। आधुनिक परिवारों में मुख्य संबंध कम हो रहे हैं। परिवार में मुखिया का महत्व कम हो रहा हैं। पारस्परिक संबंधों की अपेक्षा आर्थिक महत्व बढता जा रहा है। संबंधों में औपचारिकता बढती जा रही है। व्यक्तिवाद बढ रहा है। दूसरे के प्रति भावनाएं कम हो रही है, तथा जीवन अधिक यांत्रिक होता जा रहा है। फिर भी व्यक्ति व्यस्त है। बुजुर्गों की उपेक्षा की जा रही है, उनके प्रति सम्मान एवं कर्तव्य घट रहा है। बुजुर्गों को बहुत कम समझा जा रहा है। उनकी बातों को तार्किक कहकर स्वीकार किया जा रहा है। बढती महत्वाकांक्षा के कारण संयुक्त परिवार के विघटन से सर्वाधिक हानि बुजुर्गों को ही होती है। आज अधिकांश बुजुर्गों या तो किसी एक कोने में अकेलापन भोग रहे होते हैं या नौकरी के सहारे अपना जीवन काट रहे हैं। पहले व्यक्ति का उद्देश्य परिवार का सुख होता था, किंतु आज व्यक्ति स्वयं के हित में सोचता है। वह अधिक उपयोगिता वादी और सुखवादी हो गया है। जिस कारण से संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, विवाह स्वरूप में परिवर्तन से भी संयुक्त परिवार में सदस्य कम हुआ है। प्रेम विवाह और अंतरजातीय विवाह कर रहे हैं। परिवार एक परंपरागत संस्था है। वह परिवर्तन जल्दी स्वीकार नहीं करती इसलिए परिवार विवाह के इन रूपों को बहुत ही कम स्वीकार करते हैं। आज ऑनर किलिंग की घटना देखी जा सकती है। जो कि इसी का परिणाम है, नारी की स्थिति भी बदल रही है। महिलाए कामकाजी अधिक होती जा रही हैं। परिवार की सेवा की अपेक्षा अधिकारियों को अधिक महत्व दिया जा रहा है। घर में बच्चा आया के हाथों में है, उसे मां बाप का प्यार नहीं मिल पाता। इस तरह आधुनिक समय में परिवार संरचनात्मक और प्राथमिक रूप से परिवर्तित हो रहा है। दादा दादी की नैतिक कहानियां अब नहीं सुनाई देती। घर में अंतराक्षी जैसे खेल समाप्त हो चुके हैं, इसका स्थान म्यूजिक सिस्टम और इंटरनेट ने ले लिया है। बच्चे नेट पर उपलब्ध को वीडियो गेम्स में व्यस्त हैं। तनावग्रस्त व्यक्ति ने सोशल मीडिया पर अपना आभासी समाज बना रखा है, और यह समाज घर तक आ रहा है। ईर्षया, घृणा जैसे भाव की थी इसमें देखे जा सकते हैं। आभासी समाज वास्तविक समाज पर हावी हो रहा है। आज का परिवार संविदात्मक परिवार अधिक दिखाई दे रहा है। परिवार में संगीत की भावना अब नहीं देखी जाती। संयुक्त परिवार में संघर्ष वधू परिवार के बीच थे ताकि परिवार में यह संघर्ष पति–पत्नी के बीच आ गया हैं। भविष्य के संघर्ष माता पिता और उनके बच्चों के बीच होंगे भाई–बहन के बीच संघर्ष जारी है उत्तराधिकारी के मामले इसी की देन है।

लेकिन प्रश्न यह है कि संयुक्त परिवारों में इतना विखंडन और परिवर्तन आखिर क्यों हो रहा है। तो इसके अनेक कारण हो सकते हैं। और आधुनिकता नगरीकरण रोजगार हेतु पलायन महत्वाकांक्षा स्वार्थ घमंड विचारों में समानता आदि नगरीकरण परिवारों को नष्ट कर रहे हैं। व्यक्ति रोजगार हेतु नगरों के छोटे–छोटे घरों में रहने के लिए विवश हो जाता है। तथा उसके पास इतनी जगह नहीं है, कि वह पूरे परिवार को अपने साथ रख सके। बढती महत्वाकांक्षा ने संयुक्त परिवारों को विखंडित किया है। लोग अपना भविष्य बनाने के लिए परिवार से दूर प्रदेश अथवा विदेश चले जाते हैं। अधिक सुख–सुविधाएं मिलने के कारण वह वही बस जाते हैं। किंतु

परिवार की संरचना और प्रकार में जो परिवर्तन आज हम देख रहे हैं, उनके लिए मुख्य कारण आधुनिकता है। भारत में आधुनिकता का अर्थ पाश्चात्य सभ्यता से लगाया जाता है। अर्थात यूरोप और अमेरिका की सभ्यता से आज वहां के रहन–सहन खान–पान तथा पहनावा को अपनाकर आधुनिक अनुभव करते हैं। अंग प्रदर्शन को आधुनिकता से जोड़ दिया जा रहा है। पहनावे को लेकर मीडिया पर जंग छिडी हुई है। पाश्चात्य सभ्यता मूल रहित है, जबकि भारतीय समाज आज भी सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ा हुआ है। लोगों की विचारधारा भिन्न–भिन्न है। इस कारण परिवार में विखंडन एवं संघर्ष बढता जा रहा है। लेकिन देखा जाए तो आधुनिकता गलत नहीं है, गलत तो वह लोग हैं जो आधुनिकता को गलत रूप से परिभाषित करते हैं। आधुनिकता के अनेक लाभ हैं। आज तकनीकी संचार माध्यम से संबंधों में निकटता आई है। यदि हम वस्तु या व्यक्ति को लेकर मध्यम मार्ग अपनाए तो परिवार को विखंडित होने से बचाया जा सकता है। इसके लिए हमें अपनी सहनशीलता बढानी होगी और इच्छाएं थोड़ी सीमित करनी होगी। परिवार की खुशी में ही अपनी खुशी होती है। यह बात हमें समझने पड़ेगी और दूसरों को भी समझानि पड़ेगी। रिश्ते कच्चे धागों की भांति बहुत नाजुक होते हैं, जो एक बार टूटने पर मुश्किल से जुड़ते हैं, फिर भी उनमें गाठ पड़ ही जाती। कवि रहीम उचित कहते हैं की "रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े तो गांठ पड़े जाए," अतः परिवार विखंडित ना हो इसके लिए परिवार को जरूरी है कि आपसी मित्रता, सद्भावना , आदर, सम्मान, सेवा, भाव एवं विश्वास बना रहे। परिवार में संघर्ष समाप्त करने के लिए क्षमा सबसे बड़ी औषधि है।

कुछ विद्वान कहते हैं कि आधुनिकता, नगरीकरण और बढ़ते उपभोक्तावाद के कारण परिवार समाप्त हो रहे हैं। लेकिन यह गलत धारणा है क्योंकि परिवार एक ऐसी संस्था है, जो विवाह पर आधारित है और विवाह संतान उत्पत्ति से संबंधित है। अतः परिवार मनुष्य की मूल भावनाओं से जुड़े हैं। परिवार कभी समाप्त नहीं हो सकते केवल उसके स्वरूप बदल सकता है। जो भावनाएं बढा सकती हैं, अर्थात संरचना बदल सकती हैं, किंतु प्रकार्य वही रहेंगे। परिवार बच्चों को जन्म देंते ही उनका पालन पोषण करते हैं। तथा सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते रहेंगे। कुछ समाजशास्त्रियों का तर्क है, कि इस मूल परिवार से ही दिन दूनी, रात चौगुनी, आर्थिक उन्नति करने वाला आधुनिक औद्योगिक पूंजीवादी समाज संभव हुआ है। मूल परिवार के कारण हर मर्द अपने घर का मुखिया बन सका है और अपनी पत्नी को मुखिया की पत्नी का दर्जा दिला सका। पति पत्नी अपने बच्चों पर ध्यान केंद्रित कर सके । हर बच्चा अपने घर का राजकुमार राजकुमारी बन सका है। संयुक्त परिवार में तो बच्चों समूह में रहा करते थे।अलग अलग आय वाले, अलग–अलग रहने लगे तो पैसे का और पैसा कमाने का महत्व बच्चों पर उजागर होने लगा। पश्चिमी देशों में बच्चों को शुरू से यह समझाया जाता था, कि पैसा कमाओ, बचाओ और जमा पूंजी से दो को चार–चार को सोलह बनाते चले जाओ। बच्चों को अपने पांव पर खड़ा रहना और समय और श्रम की कीमत समझना शुरू से सिखाया जाता थां। इसलिए वे आत्मनिर्भर और स्वतंत्र व्यक्ति इकाई बन सके। बच्चे जरा बड़े हो जाते हैं तो उन्हें अपने जेब खर्च के लिए खुद कमाने की प्रेरणा दी जाती है।

हम भारतीय मानसिकता वालों को यह बहुत विचित्र लग सकता है, कि संपन्न मां–बाप अपने बच्चों को पैसा कमाने के खातिर सवेरे अखबार बांटने जाने के लिए, पुरुषों के बागान की घास काटने के लिए, साड़ी धोने के लिए या ऐसा ही कोई और काम करने के लिए न कहें। लेकिन अमेरिका में यह आम सी बात है। व्यक्ति को स्वतंत्रता और व्यक्तियों की समानता में विश्वास करने वाली जिस आधुनिकता ने संयुक्त और विस्तृत परिवार की तानाशाही और गैर बराबरी खत्म करते हुए, मैं, तुम,

हमारे बच्चे वाला मूल परिवार चलाया उसके बारे में आशंका व्यक्त की जा रही है, कि अगली सदी में मूल परिवार भी उसी तेजी से गायब हो जाएगा, जिस तेजी से इसी सदी में बिरादरी और संयुक्त परिवार गायब हुए है। यह एक विचित्र विडंबना है, कि जिन बातों से मूल परिवार में विश्वास करने वाले लोगों ने संयुक्त परिवार में विश्वास करने वालों से कहीं अधिक प्रगति की है, उनके कारण मूल परिवार की दुर्गति हुई है। वही स्त्री शिक्षा, परिवार में बच्चों का केंद्रीय महत्त्व, बच्चों को आत्मनिर्भर और निडर व्यक्ति बन कर मां बाप से कहीं अधिक प्रगति कर रहीं है। आधुनिकता ने स्त्री को शिक्षा तो दी लेकिन स्त्री को पुरुष की बराबरी में रखने से परहेज किया। स्त्रियों के लिए आधुनिकता देशों में एक लंबे अरसे तक संघर्ष चला। आज भी अमेरिका जैसे उन्नत देश में कुछ राजनीतिक प्रशासनिक पदों पर आसीन औरतों का अनुपात भारत जैसे विकासशील देश के मुकाबले से ज्यादा नहीं है। आधुनिकता के प्रवर्तक ने स्त्री शिक्षा, स्त्री को समानता दिलाने के लिए नहीं बल्कि पुरुष के लिए बेहतर गृहणी संगिनी और बच्चों की मां बनाने के लिए शुरू की आखिर मूल परिवार में पत्नी की हैसियत से स्त्री पर घर चलाने, बच्चों का पालन ंलालन करने, और घर में पति को कंपनी देने और उससे कुछ घर की, कुछ जग की बातचीत करने की भारी जिम्मेदारी जो आ पड़ी थी। संयुक्त परिवार वाला वह दौर खत्म हो चुका था जिस में काम करने वाले और तमाम लोग हुआ करते थे। सारे फैसले मुखिया के हाथ में रहते थे और नवविवाहिता बहुएं कब तक लोगों के सो जाने के बाद ही पति से मिल पाती थी। आधुनिकता के प्रवर्तक स्त्री शिक्षा को नौकरी से नहीं जोडा, लेकिन उन्होंने यह जरूर माना कि स्त्री को इस योग्य होना चाहिए कि पति को कभी कुछ हो जाए तो, वह नौकरी करके अपने बच्चों का पेट भर सके। नौकरी भी ऐसी जो परिवार के प्रति उनके कर्तव्यों की पूर्ति करे। कई परिवार ,एसे भी होने लगे हैं जिनमें बच्चे पैदा ना करके गोद लेने का रास्ता अपनाया जा रहा हैं। हमारी संयुक्त परिवार प्रणाली में व्यक्तिवत और सामाजिक सभी समस्याओं का समाधान था। बीमारों, वृद्वों, बच्चों, बेरोजगारों, लचारों के लिए किन्ही अलग संस्था की आवश्यकता ना थी। परिवार को टूटने से बचानें के लिए आज पीड़ित महिला परामर्श केंद्र, वृद्वाश्रम, होमकेस, और आफ्टर केयर होम आदि कितनी संस्थाएं मिलकर भी नहीं कर पा रही हैं।

औद्योगिकरण, नगरीकरण, प्रजातांत्रिककरण, शिक्षा, स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता, व्यक्तिवादिता, आदि अनेक कारणों के परिणाम स्वरूप समाज में आज क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। इसका प्रभाव परिवार की संरचना एवं कार्यों पर भी पड़ रहा है।

परिवार की संरचना में होने वाले प्रमुख परिवर्तन निम्नलिखित हैं।–

1–परिवार के आकार में परिवर्तन–

पाश्चात्य सभ्यता आवास की समस्या, जनसंख्या में वृद्धि, आत्मकेंद्रित, विचारधारा आदि कुछ एसे प्रमुख कारण है। जिनमें परिवार का आकार छोटा हो गया हैं।इसका तात्पर्य है कि सदस्यों की संख्या में कमी।

2–पारिवारिक सत्ता में परिवर्तन –

आज का युग प्रजातंत्र का युग है। इसका प्रभाव परिवार पर भी पड़ा है। पहले कटरा के पास सर्वोच्च शक्ती थी। परिवार में वह जो भी कहता था उसका पालन होता था। किंतु वर्तमान स्थिति में आयु का महत्व कम हो गया है। व्यक्तिगत योग्यता को अधिक महत्व मिलने लगा है।

3–संबंधों में परिवर्तन –

परिवार के सदस्य के मध्य जो अनौपचारिक संबंध थे। वह अब क्रम से औपचारिक संबंधों में परिवर्तित होते जा रहे हैं। आज प्रत्येक सदस्य निजी स्वार्थों से ग्रसित तथा व्यक्तिवादिता निरंतर बढ़ती जा रही है। इसका कारण सदस्यों में कटु की भावना समाप्त होती जा रही है।

4–विवाह के रूप में परिवर्तन –

आज विवाह का धार्मिक आधार समाप्त होता जा रहा है। इसका धार्मिक पक्ष काफी कमजोर हो गया है। आज के युग में विलंब विवाह, प्रेम विवाह, अंतरजातीय विवाह, अधिक हो रहे हैं इनसे विवाह की प्रकृति की बदलती जा रही है।

5–नारी की प्रस्तुति में परिवर्तन –

पहले नारी का जीवन केवल परिवार की चार दिवारी तकिया व्रत था। शिक्षा की कमी के कारण तथा आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर ना होने के कारण उन्हें पुरुषों पर आश्रित रहना पड़ता था। पर आज उन्हें सभी क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त है। आज पत्नी, पति की दासी नहीं अपितु सहयोगी और मित्र है। आज उसमें इतनी क्षमता है , कि वह पति के साथ हर क्षेत्र में उसका साथ दे सकती है, और देती भी है मात्र इतना ही नहीं आर्थिक क्षेत्र शैक्षणिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी इसका अत्यधिक महत्त्व हो गया है।

परिवार के कार्यों में परिवर्तन–

1–सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यों में परिवर्तन

आज का युग परिवर्तन का युग है। समाज के हर पहलू में परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों का नवीन मूल्य एवं आदर्शों के कारण परिवार भी प्रभावित हैं। परिवार के सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्य आज दूसरी समितियों ने ले लिए हैं।

2–आर्थिक कार्यों में परिवर्तन–

पहले परिवार आर्थिक उत्पादन की एक इकाई था। पर अब नहीं है, पहले लोग परिवार के व्यवसाय से अपना जीवन यापन करते थे। वहीं पर व्यवसाय परंपरागत रुप में पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता था। पर आज व्यक्तिवादी तथा निजी स्वार्थ की भावना ने व्यक्ति को स्वतंत्र रूप में आर्थिक क्षेत्र चुनने के लिए विवश किया हैं। परिवार से आर्थिक उत्पादन का हस्तांतरण हो चुका है, परंतु एक उपभोग की इकाई के रूप में अभी भी परिवार का महत्व बना हुआ हैं।

3–धार्मिक कार्यों में परिवर्तन

पहले परिवार में धर्म की शिक्षा दी जाती थी। सभी सदस्यों पर धर्म का बहुत अधिक प्रभाव था। और इसी कारण धर्म के द्वारा सामाजिक नियंत्रण रखा जाता था। परंतु आज वैज्ञानिक, प्रगति, औद्योगिकरण, धर्मनिरपेक्षता और भौतिकवाद के कारण धर्म का स्थान गौण हो गया है। आज परिवारों में सामूहिक पूजा और कार्यों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है।

4–मनोरंजनात्मक कार्यों में परिवर्तन–

परिवार परंपरागत रूप से मनोरंजन का स्थल भी माना जाता रहा है। आज व्यवसायिक मनोरंजन का युग है, सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, नाटक आदि अनेक प्रकार के साधनों के द्वारा मनुष्य मनोरंजन करना चाहता है। औद्योगीकरण एक विशेष प्रकार की आर्थिक व्यवस्था को जन्म देता है। जो कृषि पर आधारित, आर्थिक व्यवस्था से भिन्न होता था। नई–नई मशीनों के आगमन से उत्पादन प्रक्रिया के रूप में भी परिवर्तन होते हैं। और श्रम विभाजन जैसे समाजिक तत्व उत्पन्न होते हैं। इस नई आर्थिक व्यवस्था का सीधा प्रभाव परिवार के आकार एवं प्रकार पर पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित रोजगार होने के कारण सभी को रोजगार नहीं मिल पाता था। ग्रामीण जनसंख्या का पलायन उद्योगों

की ओर होता है। औद्योगिकरण के परिणाम स्वरूप स्त्रियों को भी नौकरी की सुविधा मिली और उनकी स्थिति एवं भूमिका में परिवर्तन हुआ औद्योगिकरण के कारण द्वितीयक समूह की प्रधानता बढ़ गई, जिससे परिवार और प्राथमिक समूह में भी औपचारिक संबंधों के तत्व उभरते आ रहे हैं। नगरीय व्यवस्था अत्यधिक गतिशील होती हैं। यहां विभिन्न विचारधारा विश्वास व धर्म आदि के लोग रहते हैं। यहां के लोग नवीनता के समर्थक होते हैं। भौतिकवाद और स्पर्धा पूर्ण दृष्टिकोण के नगरों के सामाजिक मूल्य होते हैं। नगरीकरण ने भी परिवार की संरचना को प्रभावित किया हैं। समय–समय पर सरकार द्वारा कानून भी पारित किए गए, जिनमें महिलाओं की परिस्थिति और अंतः परिवार का स्वरूप प्रभावित हुआ वर्तमान समय की भारतीय शिक्षा व्यवस्था अंग्रेजों की देन है। जिसके प्रभाव में हमारा जीवन दर्शन भी पश्चिम के भौतिकवाद एवं उदारवाद के दर्शन से प्रभावित हुआ हैं।

निष्कर्ष –

परिवार का स्वरूप भिन्न–भिन्न रूप से परिवर्तित हो रहे हैं। औद्योगिकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण आदि यातायात के साधन के कारण परिवार के स्वरूप बदल रहे हैं। गांव में जो परिवार का स्वरूप है, वह शहर से बिल्कुल भिन्न है। समाज में अनेक कारक है जो परिवार की संपूर्ण संरचना को प्रभावित कर रहे है। यह जरूरी नहीं है कि एक या दो कारक ही परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हो संसार के विभिन्न भागों में परिवार के स्वरूपों में भिन्नता दिखाई देती है। इस भिन्नता का मूल कारण स्थान विशेष की भौगोलिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की भिन्नता है। आज आधुनिक परिवार उत्पादन की इकाई के बजाय उपभोग की इकाई के रूप में विद्यमान है। उत्पादन के इकाई के रूप में परिवार के आर्थिक महत्व में हुए। इस आधुनिक परिवार समूह की पुरानी एकता को कमजोर किया है। नगरीकरण एवं औद्योगिकरण की प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरूप सामाजिक गतिशीलता में अत्यधिक वृद्वि हुई है। परंपरागत व्यवसाय से संबंध की काफी सीमा तक समाप्ति इत्यादि अनेक कारणों ने ग्रामीण युवकों को नगरों एवं औद्योगिक केंद्रों में नौकरी के अवसर प्रदान किए हैं। ग्रामीण विस्तृत परिवार से एक प्रारंभिक परिवार अलग हो जाता है। यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है तथा ग्रामीण विस्तृत परिवारों से टूटकर प्रारंभिक परिवार से अलग होते रहते हैं। इस तरह से परिवार के स्वरूप में बदलाव आते रहते है। परिवार का स्वरूप जो पहले था वह अब नहीं जो अभी है वह भविष्य में नहीं रहेगा है।

संदर्भ सूची–

1–सिंह, बीएन सिंह जन्मेजय,ग्रामीण समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, 2015, पृ– 62

2–पांडे, एस एस, समाजशास्त्र, दीक्षांत एजुकेशन सेंटर, दिल्ली, पृ– 9

3–महाजन, धर्मवीर, महाजन, कमलेश, नातेदारी विवाह एवं परिवार का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, 2005 पृ–199

4–शर्मा, प्रमोद कुमार, परिवार और विवाह के बदलते प्रतिमान, सिंघाई पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स पंडित दीनदयाल उपाध्याय नगर, रायपुर।

5–सिंह, जे. पी, समाजशास्त्र अवधारणा एवं सिद्धांत, तृतीय संस्करण 2013 बाय लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली पृ– 237

यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

लेफ्टि (डॉ0 पारूल मिश्रा,
एसोसिएट प्रोफेसर शिक्षाशास्त्र विभाग
एन0ए0के0पी0जी0 कालेज फर्रूखाबाद
कु0 रूचि चौहान,
शोध छात्रा

सारांश–

अभिवृत्ति विद्यार्थियों के जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है जिस को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है प्रस्तुत अध्ययन में यूपी बोर्ड एवं सीबीएसई बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य दोनों ही बोर्डों के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना तथा अभिवृत्ति पर लिंग के प्रभाव को जानना है। न्यादर्श के रूप में फर्रुखाबाद जिले के 60–60 विद्यार्थियों का चयन किया गया जो क्रमशः यू0पी0 बोर्ड तथा सी0बी0एस0ई0 बोर्ड में अध्यनरत थे। आंकड़ों का संकलन करने के लिए टी0एस0सोधी द्वारा निर्मित अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया। अध्ययन के परिणामों से ज्ञात हुआ कि लैंगिक विभिन्नता अभिवृत्ति पर विचारणीय प्रभाव डालती है। यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति से भी अंतर पाया गया।

प्रस्तावना–

शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति का संपूर्ण विकास करना है शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक व्यवहार को श्रेष्ठ तरीके से करना सिखाती है। इस दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य भावी युवा पीढ़ी में राष्ट्रप्रेम के संस्कार डालना तथा उन्हें राष्ट्रभावा समाज के प्रति उनके कर्तव्यों को निभाने के योग्य बनाना है इस संबंध में सन 1927 ईस्वी में ''इंडिया'' पत्र में बापू ने लिखा है' विद्यार्थियों को राष्ट्र का निर्माता बनाना है''। इस प्रकार शिक्षा का मुख्य लक्ष्य व्यक्तिगत के साथ–साथ सामाजिक विकास भी है। आधुनिक और सर्वभौम रक्षा के संदर्भ में समाज व देश समानार्थी है, इस प्रकार लोकतंत्र में समाज व देश का विकास एक दूसरे के पूरक है इस प्रकार आधुनिक लोकतंत्र में व्यक्तिगत सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास का संदर्भ लगभग एक समान होता है राष्ट्र के विकास के लिए मानवीय संसाधनों को विकसित करना आवश्यक है यह कार्य शिक्षा के द्वारा ही संपादित किया जा सकता है।

भारत में माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का संचालन विभिन्न परिषदों (बोर्ड) द्वारा किया जाता है, जिनमें से माध्यमिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश (यू0पी0बोर्ड) तथा केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद (सी0बी0एस0ई0 बोर्ड) भी एक है माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थी किशोरवय होते हैं। इस स्तर पर विद्यार्थी निश्चित ही किसी व्यक्ति वस्तु संस्था आदि के विषय में अपना कोई ना कोई दृष्टिकोण बना लेते हैं तथा उसी आधार पर उसका मूल्यांकन करते हैं अपने इसी दृष्टिकोण की वजह से वे किसी भी व्यक्ति वस्तु संस्था आदि के प्रति विशेष व्यवहार करते हैं उनका यह दृष्टिकोण ही उनकी अभिवृत्ति है जो उनसे किसी भी स्थिति में प्रतिक्रिया स्वरूप विशेष व्यवहार करवाता है इस प्रकार कहा जा सकता है कि

अभिवृत्ति व्यक्ति का वह दृष्टिकोण है जो किसी व्यक्ति वस्तु संस्था अथवा स्थिति के प्रति किसी विशेष प्रकार के व्यवहार को इंगित करता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में विभिन्न क्षेत्रों के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया गया है।

समस्या की आवश्यकताः–

वर्तमान में ना सिर्फ अभिभावक बल्कि स्वयं विद्यार्थी भी सर्वश्रेष्ठ शिक्षा की चाहत रखते हैं ऐसी शिक्षा जो कि युवाओं में वंचित ज्ञान कौशल और दक्षता का विकास करें उन्हें सही मायने में शिक्षित और संस्कारिक बनाएं उनमें सही और गलत को समझने का नजरिया विकसित करें उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य बनाए। उन्हें सदी की कसौटी पर खरा उतरने योग्य बनाए उनमें प्रतिस्पर्धात्मक विश्व रंगमंच पर सफल होने के लिए आवश्यक गुण और क्षमताओं का विकास करें। शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृति में बहुत परिवर्तन हुआ है शिक्षक के प्रति भी उनका दृष्टिकोण बदला है जिसके कारण उनके संबंधों में भी परिवर्तन आया है अनुशासन के प्रति भी विद्यार्थी अलग–अलग प्रकार का नजरिया रखने लगे हैं देश धर्म व मानवता के प्रति भी विद्यार्थियों में विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण विकसित हुए हैं। वर्तमान में विद्यार्थी शिक्षक अभिभावक व अनुशासन के प्रति कैसा दृष्टिकोण रखते हैं? धर्म देश व मानवता के प्रति उनका नजरिया कैसा है? प्रस्तुत अध्ययन में इन्हीं सब बातों को जानने का प्रयास किया गया है।

संबंधित साहित्य का अध्ययन–

विमल चंद्र और सिंह चंद्रकला (2008 मेरठ) में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया जिसके परिणाम स्वरूप ज्ञात हुआ कि विद्यार्थी अध्यापक तथा अभिभावक, अनुशासन व मानवता के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं, किंतु धर्म तथा राष्ट्र के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति नकारात्मक पाई गई। त्यागी एम पी सिंह विजेंद्र ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की जनसंख्या शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण एवं जागरूकता का अध्ययन किया जिससे ज्ञात हुआ कि महिलायें जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से जनसंख्या वृद्धि की समस्याओं के समाधान के प्रति अधिक साकर सकारात्मक दृष्टिकोण रखती हैं। आनंदिता अजंता, सभरवाल इंद्रेश व अग्रवाल राहुल (2010) ने यौन शिक्षा के प्रति किशोरों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया, यह अध्ययन विद्यार्थियों की यौन जागरूकता के स्तर पर यौन शिक्षा के प्रभाव तथा एवं शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग के प्रभाव को जानने के लिए किया गया अध्ययन के आधार पर यौन शिक्षा और यौग जागरूकता में धनात्मक सहसंबंध सहज बंद पाया गया और यौन शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग का भी आंशिक प्रभाव पाया गया। तिवारी सुशील (2011) ने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की लोकतांत्रिक अभिवृत्ति पर लिंग, आवास (शहरी और ग्रामीण) विषय वर्ग (विज्ञान और कला) तथा शैक्षिक योग्यता (स्नातक तथा स्नातकोत्तर) के प्रभाव का अध्ययन किया जिस से ज्ञात हुआ कि लिंग तथा विषय वर्ग के आधार पर विद्यार्थियों की लोकतांत्रिक अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं पाया गया तथा शहरी व स्नातकोत्तर विद्यार्थियों में ग्रामीण तथा स्नातक विद्यार्थियों की तुलना में अधिक उच्च लोकतांत्रिक मूल्य पाए गए। पठान स्वालेहा एस (2011) ने एकल शिक्षा तथा सह शिक्षा वाले कॉलेजों के विद्यार्थियों की सह शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। जिसके परिणाम स्वरूप ज्ञात हुआ कि नए शिक्षा प्रणाली के प्रति एकल शिक्षा वाले विद्यार्थियों की तुलना में सह शिक्षा वाले विद्यार्थी अधिक अभिवृत्ति वाले पाए गए।

समस्या कथन–

प्रस्तुत अध्ययन में ''यूपी बोर्ड एवं सीबीएसई बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन'' विषय का चयन किया गया।

प्रस्तुत अध्ययन के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–

- लैंगिक विभिन्नता के आधार पर यूपी बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- लैंगिक विभिन्नता के आधार पर सीबीएसई बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- यू0पी0 बोर्ड और सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनायें–

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्नलिखित परिकल्पना निर्मित की गई–

- लैंगिक विभिन्नता के आधार पर यू0पी0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- लैंगिक विभिन्नता के आधार पर सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0सी0 के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

न्यादर्श–

प्रस्तुत शोध में न्यादर्श चयन के लिए यादृच्छिक विधि का प्रयोग किया गया। न्यादर्श के रूप में यू0पी0 बोर्ड के 60 विद्यार्थियों का चयन किया गया जिनमें 30 छात्राएं एवं 30 छात्र सम्मिलित किए गए इसी प्रकार सी0बी0एस0सी0 बोर्ड के विद्यार्थियों का चयन किया गया।

तालिका–1
विद्यार्थियों का विवरण

बोर्ड का नाम	छात्र	छात्रायें	कुल योग
यू0पी0 बोर्ड	30	30	60
सी0बी0एस0सी0 बोर्ड	30	30	60
कुल योग	**60**	**60**	**120**

प्रयुक्त उपकरण–

प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों का संकलन करने के लिए टी0एस0 सोधी द्वारा निर्मित अभिवृत्ति का प्रयोग किया गया। इस अभिवृत्ति मापनी द्वारा विद्यार्थियों की पांच

अलग–अलग क्षेत्रों के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया जा सकता है, जो कि निम्नलिखित है–

- अध्यापक एवं अभिभावक के प्रति अभिवृत्ति।
- अनुशासन के प्रति अभिवृत्ति।
- मानवता के प्रति अभिवृति।
- राष्ट्रीयता के प्रति अभिवृत्ति।
- धर्म के प्रति अभिवृत्ति।

आंकड़ों का विश्लेषण/विधि–

यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर को जानने के लिए **'टी–परीक्षण'** का प्रयोग किया गया। परिकल्पना का परीक्षण 0.02 एवं 0.01 सार्थकता के स्तर पर किया गया।

अध्ययन के परिणाम–

प्रस्तुत अध्ययन से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए–

तालिका–2

लैगिक विभिन्नता के आधार पर यू0पी0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति

अभिवृति के क्षेत्र	छात्रायें		छात्र		+ मान
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	
1	7.73	2.7	7.72	3.5	0.56
2	0.61	3.9	-2.2	3.8	1.57
3	8.53	4.3	4.47	5.9	3.00**
4	2.10	6.4	2.57	6.9	1.74
5	11.57	3.8	11.3	4.1	0.26
कुल	**30.53**	**19.8**	**20.23**	**10.0**	**3.97****
* *= 0.01 विश्वास के स्तर पर सार्थक					

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि यू0पी0 बोर्ड के छात्र एवं छात्राएं दोनों ही अध्यापक एवं अभिभावक मानवता राष्ट्र एवं धर्म के प्रति सकारात्मक एवं लगभग समान अभिवृत्ति रखते हैं। अनुशासन के क्षेत्र में छात्र एवं छात्राओं की अभिवृत्ति में अंतर पाया गया छात्राओं की अभिवृत्ति अनुशासन के प्रति सकारात्मक पाई गई जबकि छात्रों ने अनुशासन के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति प्रदर्शित की।

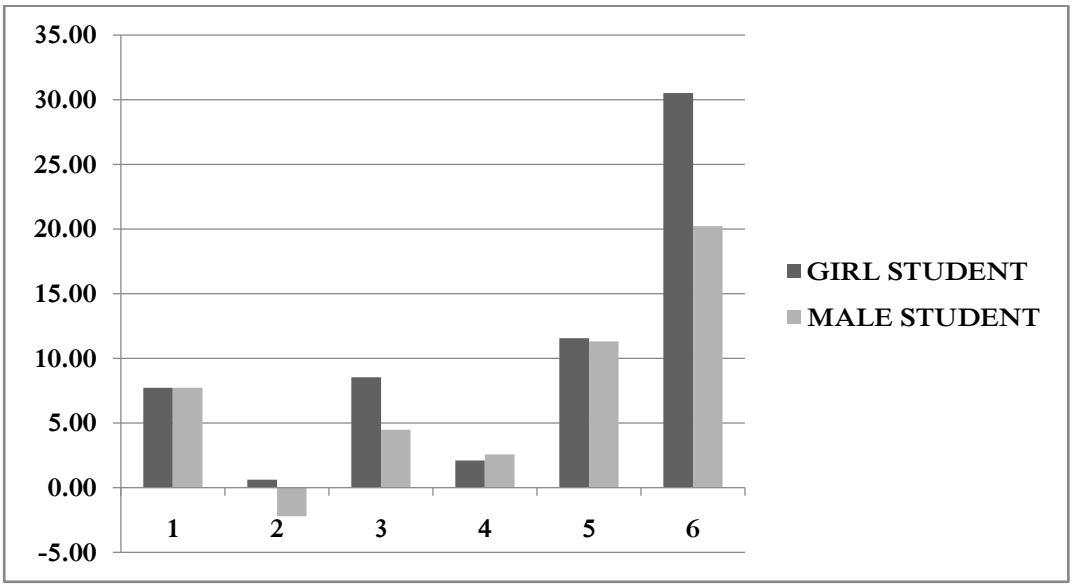

चित्र–1 लैंगिक विभिन्नता के आधार पर यू0पी0 बोर्ड के अब विद्यार्थियों की अभिवृत्ति

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि यू0पी0 बोर्ड की छात्राएं अभिवृत्ति के सभी क्षेत्रों में धनात्मक दृष्टिकोण रखती हैं यद्यपि अनुशासन के क्षेत्र में उनकी अभिवृत्ति बहुत ही कम है छात्रों ने अन्य क्षेत्रों के विपरीत अनुशासन के प्रति ऋणात्मक अभिवृत्ति दर्शायी दोनों ही समूह धर्म के प्रति सबसे अधिक धनात्मक अभिवृत्ति रखते हैं छात्राएं दूसरे स्थान पर पर मानवता को रखती हैं जबकि छात्र माता–पिता व शिक्षकों को।

तालिका–3

लैंगिक विभिन्नता के आधार पर सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति

अभिवृत्ति के छात्र	छात्रायें		छात्र		+ मान
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	
1	7.23	2.5	5.93	3.1	1.78
2	-1.5	2.6	-2.07	4.1	0.63
3	7.13	5.7	7.73	5.0	0.43
4	7.43	2.3	6.27	2.5	1.84
5	-1.33	10.2	-3.8	8.6	1.00
कुल	**18.26**	**14.9**	**13.06**	**14.1**	**1.36**

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के छात्र एवं छात्राायें दोनों ही अध्यापक एवं अभिभावक मानवता एवं राष्ट्रीयता के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं किंतु अनुशासन एवं धर्म के प्रति छात्र एवं छात्राओं की अभिवृत्ति नकारात्मक पाई गई।

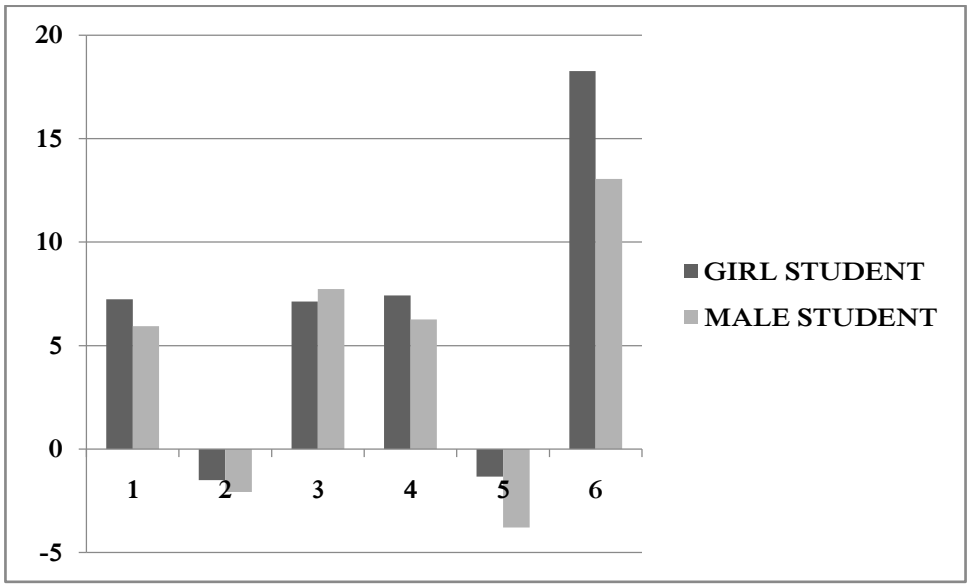

चित्र.–2 लैंगिक विभिन्नता के आधार पर सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति।

उपरोक्त चित्र के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि सीबीएसई बोर्ड के छात्र एवं छात्राएं दोनों ही अनुशासन एवं धर्म के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण रखते हैं, इसके विपरीत छात्राएं माता–पिता तथा शिक्षकों, मानवता एवं राष्ट्रीयता के प्रति समान व उच्च स्तर की अभिवृत्ति दर्शाती है जबकि छात्रों की विभिन्न क्षेत्रों में सकारात्मक अभिवृत्ति का घटता हुआ क्रम इस प्रकार है– मानवता(+), राष्ट्रीयता(+), माता–पिता व शिक्षक(+), अनुशासन(–), व धर्म(–)।

तालिका–4

यू0पी0 बोर्ड ओर सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति

अभिवृत्ति के छात्र	यू0पी0 बोर्ड के विद्याार्थी		सी0बी0एस0सी0 बोर्ड के विद्याार्थी		+ मान
	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	
1	7.50	3.1	6.58	2.7	1.73
2	-0.79	4.0	-1.10	3.9	0.43
3	6.85	5.1	7.43	5.8	0.58
4	0.77	6.4	6.85	2.5	6.90**
5	25.74	4.0	-3.71	8.8	6.22**
कुल	**25.74**	**10.8**	**15.66**	**14.3**	**4.36****
**= विष्वास के स्तर पर सार्थक					

उपर्युक्त तालिका में दिए गए आंकड़ों से ज्ञात होता है कि यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थी अध्यापक एवं अभिभावक मानवता तथा राष्ट्रीयता के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं तथा अनुशासन के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं यू0पी0 बोर्ड के विद्यार्थी ने धर्म के प्रति उच्च स्तर का अभिवृत्ति प्रदर्शित की जबकि सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थी धर्म के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति वाले पाए गए।

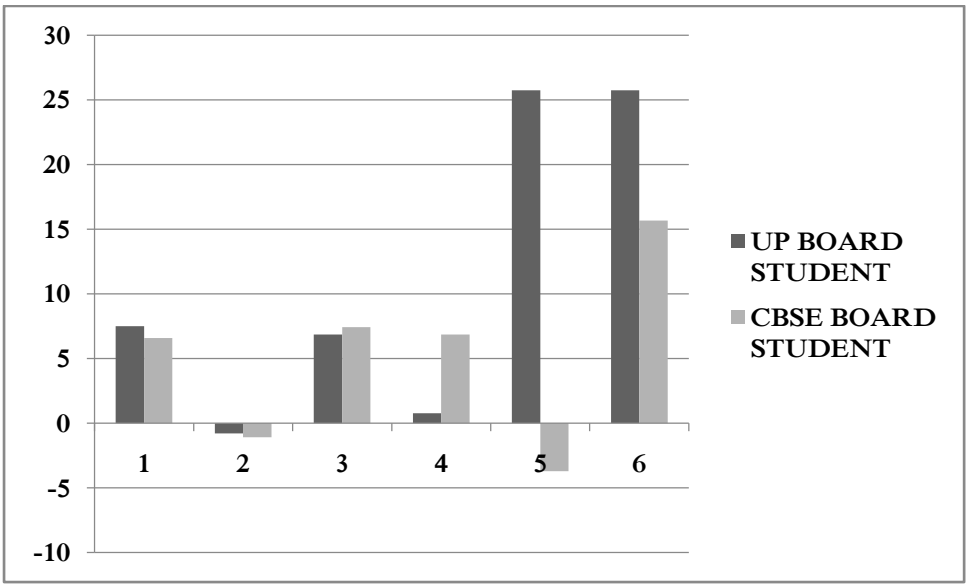

चित्र–3 यू0पी0 बोर्ड और सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति

चित्र 3 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि यूपी बोर्ड के विद्यार्थी धर्म के प्रति उच्च स्तर की सकारात्मक अभिवृत्ति के रखते हैं जबकि सीबीएसई के विद्यार्थी नकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं। यूपी बोर्ड के विद्यार्थी अभिभावक व शिक्षकों के प्रति द्वितीय क्रम में सकारात्मक अभिवृत्ति दर्शाते हैं परंतु सीबीएसई के विद्यार्थी इस क्षेत्र में तृतीय क्रम में सकारात्मक अभिवृत्ति दर्शाते हैं परंतु सीबीएसई के विद्यार्थी इस क्षेत्र में तृतीय क्रम में नकारात्मक अभिवृत्ति दर्शाते हैं। इस प्रकार यूपी बोर्ड के विद्यार्थी मानवता व राष्ट्रीयता के प्रति क्रम से तृतीय व चतुर्थ क्रम में सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं। जबकि सीबीएसई के विद्यार्थी क्रमशः प्रथम व द्वितीय क्रम में सकारात्मक अनुशासन के प्रति दोनों सभी समान रूप से नकारात्मक अभिवृत्ति वाले दर्शाते हैं।

निष्कर्ष–

प्रस्तुत अध्ययन में यूपी बोर्ड और सीबीएसई बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति को जानने का प्रयास किया गया, विश्लेषण एवं विवेचन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए–

- छात्राओं की सभी क्षेत्रों में धनात्मक अभिवृत्ति पाई गई जबकि छात्रों ने अनुशासन के प्रति ऋणात्मक अभिवृत्ति दर्शाई इससे स्पष्ट होता है कि लैंगिक विभिन्नता का यू0पी0 बोर्ड के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति पर विचारणीय प्रभाव पड़ा।
- सी0बी0एस0ई0 बोर्ड की छात्राओं एवं छात्रों दोनों ने ही अनुशासन व धर्म के प्रति ऋणात्मक अभिवृत्ति दर्शाई जबकि अन्य क्षेत्रों के प्रति उनका दृष्टिकोण सकारात्मक पाया गया।

- यू0पी0 बोर्ड तथा सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के विद्यार्थियों ने कुछ क्षेत्रों के प्रति व्यापक विभिन्नता प्रदर्शित की। दोनों ही बोर्ड के विद्यार्थियों में अध्यापक तथा अभिभावक अनुशासन तथा मानवता के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया है यूपी बोर्ड के विद्यार्थियों की अपेक्षा सीबीएसई बोर्ड के विद्यार्थियों का दृष्टिकोण राष्ट्रीयता के संदर्भ में अधिक सकारात्मक पाया गया यूपी बोर्ड के विद्यार्थी धर्म के प्रति सकारात्मक दृ ष्टिकोण रखते हैं जबकि सभी बी.एस.सी. बोर्ड के विद्यार्थी धर्म के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति वाले पाए गए।

शैक्षिक निहितार्थ–

- माध्यमिक स्तर पर छात्र एवं छात्राएं दोनों ही किशोरावस्था से गुजर रहे होते हैं जो कि दबाब का तनाव की अवस्था है ऐसे में शिक्षकों को चाहिए कि वे छात्रों का उचित मार्गदर्शन करें और अभिभावकों को चाहिए कि वे बालकों की मनोवृति को समझकर अनुकूल उचित व्यवहार करें।
- दोनों ही बोर्ड के विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता पाई गई है विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता का कारण असुरक्षित और लक्ष्यहीन भविष्य पाठ्य सहगामी क्रियाओं का अभाव, घर और विद्यालय का उचित वातावरण, आर्थिक समस्यायें, निर्देशन का अभाव आदि में से कुछ भी हो सकता है। अनुशासन में सुधार के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं–

- विद्यालयों में सीमित छात्र संख्या।
- विद्यार्थियों की व्यक्तिगत शैक्षिक व आर्थिक समस्याओं के निदान के लिए विशेष कोष की स्थापना की जाए।
- निर्देशन और परामर्श की व्यवस्था।
- प्रशासनिक कार्य विधि में वांछित सुधार किए जाए।
- समाज और विद्यालय में बेहतर सम्बंध।
- छात्रों को राजनीति से दूर रखा जाए।
- विद्यालय के वातावरण में अनुशासन को समावेशित किया जाए।
- वार्षिक उत्सवों पर अनुशासनपूर्ण व्यवहार करने वाले सर्वश्रेष्ठ छात्रों को पुरस्कृत किया जाए।

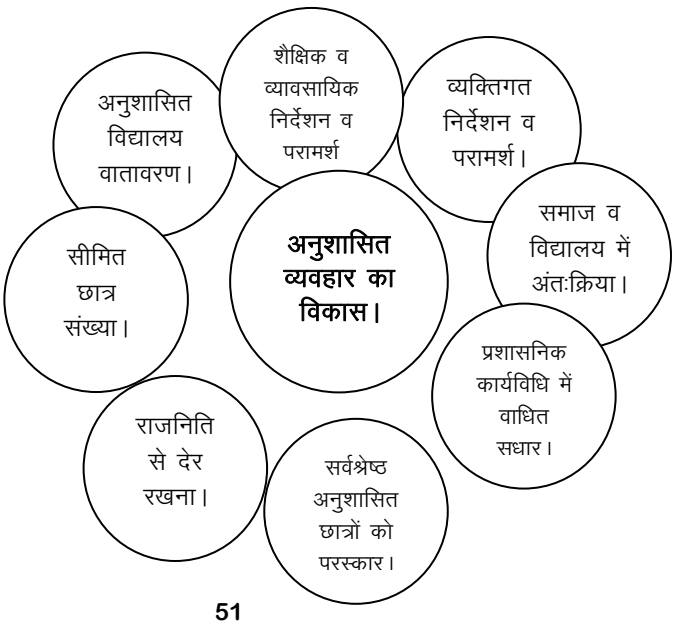

चित्र–4 अनुशासन समस्या में सुधार के उपाय।

- सी0बी0एस0सी0 बोर्ड के विद्यार्थियों में धर्म के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति पाई गई धर्म के प्रति अभिवृत्ति में सुधार के लिए आवश्यक है कि विद्यालय के कार्य प्रार्थना सभा से आरंभ होना एनिमल हो साथ ही धार्मिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का रूप अंग बनाया जाए।

संदर्भ सूची–

- चौबे एसपी (तुलनात्मक शिक्षा); अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा पृष्ठ संख्या–568।
- पांडे आर0एस0 एवं मिश्र के0एस0 (भारतीय शिक्षा की ज्वलंत समस्याएं) शिक्षाशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, बोहरा पब्लिकेशन एवं डिस्ट्रीब्यूटर इलाहाबाद पृष्ठ संख्या–354।
- कपूर उर्मिला, भारतीय शिक्षा की सामाजिक समस्या, साहित्य प्रकाशन आगरा पृष्ठ 2541।
- वर्मा प्रीति एवं श्रीवास्तव डॉक्टर डी.एन., मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा 72 2008 पृष्ठ संख्या 51।
- त्यागी एम पी एस सिंह विजेंद्र, माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी की जनसंख्या शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति एवं जागरूकता का अध्ययन रिसर्च जनरल ऑफ एजुकेशन खंड एसोसिएशन।
- आनंदित अजंता रेशमा अग्रवाल राहुल (2010) यौन शिक्षा के प्रति किशोर की अभिवृत्ति का अध्ययन, एजुकेशन, रिसर्च इनफॉरमेशन सेंटर।
- तिवारी सुशील कुमार (2011) विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की लोकतांत्रिक अभिवृत्ति का अध्ययन जनरल ऑफ आदेश साइंस एंड कॉमर्स।
- पठान स्वालेहा एस., (2011) एकल शिक्षा तथा सह शिक्षा वाले कालेजों के विद्यार्थियों की सह शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन जनरल ऑफ आर्टस, साइंस एंड कॉमर्स।
- विमल चंद्र एवं सिंह चंद्रकला (2008) ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अभिवृति का अध्ययन'' एजुकेशन रिसर्च इंफॉर्मेशन सेंटर।
- www.gyaneentral.com
- www.ERIC.com
- www.delhifocous.com

USE OF TECHNOLOGY IN EDUCATION FOR EFFECTIVE TEACHING & LEARNING

Dr. Sunita Sharma
Associate Prof. & Head,
Education Department
D.A.V. (PG) College, Muzaffarnagar (U.P)

Abstract

The present era is age of information and technology which has become a global phenomenon in the 21st Century. The information is emerging in all fields throughout the World and has totally metamorphosed and transformed the old concept of education as well as its imparting system. To meet the demands of the society, the new Information Technology has emerged through which information / knowledge is transferred, recorded, edited, stored, manipulated and disseminated in a minimum possible time with a maximum coverage o the field.

The classroom teaching by the teachers and learning by pupils both are the fundamental concepts of Educational Institutions. These fundamental concepts of teaching and learning can only be revolutionized by this new Information Technology only. Today's perception of education is entirely altered by incoming increased necessities and demands of the society. In order to fulfill aforesaid requirements, an Information Technology acts as an array of powerful tools in transforming the present isolated, teacher centered and text bound classrooms into rich student focused interaction knowledge environment to shape and construct learner's knowledge and skill through new learning approaches, E - mail, Internet, Computers, Electronic Publication and teleconferencing etc. Thus, Information Technology is not just another subject; it has become a tool in turning education to a learning experience. The present paper dealt with technology use in the field of education to make the process of Teaching and Learning more effective.

Key Words: Digital Technology, Paradigm, Transforming, Interaction, Gloomy, Networking.

Today, in fact we are living in the age of information which has become a global phenomenon in the present century. The tremendous flow of digital technology is emerging in all fields throughout the world and has totally metamorphosed and transformed the old concept of education as well as its imparting system.

The 1998 **UNESCO World Education Report** the teachers and teaching in a changing world predicts transformation of teaching learning process and the way teachers and learners gain access of knowledge and information.

Now the question arises what the digital technology is? Digital Technology comprises of the words i.e. digital and technology which indicates the information knowledge be arranged to spread in a manner that it covers more area in less time. In other

words, we can say digital Technology is a tool through which information / knowledge is transferred, recorded, edited, stored, manipulated and disseminated in a minimum possible time with a maximum coverage of the field.

The traditional view of learning process

The classroom teaching by the teachers and learning by the pupils, both are the fundamental concepts of educational institutions. Today's perception of education is entirely altered by incoming increased necessarily of technology. The gloomy geography lessons, dreamy history lectures and mind numbing physics numerical may no longer remain all that mundane as magical touch of digital technology replaces black board and white chalk with that of Key Board & Mouse.

The modern view of learning process

The modern concept of learning is changed due to the new era of digital learning in which we are in the process of transitioning from "broadcast" learning to "interactive". Today's students no longer want to be passive recipients and remain as active participants in the learning process. So, in the era of emerging technologies, the role of a teacher is more than that of a facilitator or guide. The teacher educator should recognize the now skills and train teachers to develop and welcome a partnership with electronic education.

Digital Technology as an Array of powerful Tools

Digital technology helps in transforming the present isolated, teacher centered and text bound class rooms into rich, student focused interaction knowledge environments. To meet these challenges, colleges must embrace the new technologies and appropriate the new digital tools for learning. The teachers should move towards the goal of transforming the traditional paradigm of learning. Through digital technology environment can be created to shape and construct learner's knowledge.

Digital Technology acts as a powerful device

In order to promote active learning and open new learning approaches, E-mail, Internet, Computers, Electronic publications and teleconferencing etc. also have enormous educational potential. The digital library will eliminate the need for much book or reference space. On line education facilitates group learning and the success of distance education depends largely on the efficient use of digital Technology. Digital Technology offers enormous potential for improving the delivery of information and knowledge in all sectors of life including all forms of education.

Digital Technology in Teacher Education

Teacher education institutions are facing with the challenge of preparing a new generation of teachers to effectively use the new learning tools in their teaching practices. Technology in general allows people to interact & share information. Digital Technology is the most significant challenge before teachers, schools and teacher educators not only helps in restructuring learning process but it also plays an important role in fulfilling the demands of the society.

Digital Technology use in teacher education means for current prevailing concepts of education and colleges. The teacher education programme requires the acquisition of

new resources, expertise and careful planning. In approaching this task, It is necessary to understand:

- To create student centered learning environment.
- Important strategies for the infusion of digital technology in Teacher Education.
- Competencies required by the teachers related to content, pedagogy, technical issues, social issues, collaboration and networking.
- The stages of teacher development and the levels of adoption of digital technology by teachers.
- The impact of technology on global society.

Role of a teacher in the application of Digital Technology

The role of the teacher in the new educational process is also changing. Students need a learner facilitator to give and explain the wealth of information available online. Digital Technology should be utilized by the teachers for upgrading both knowledge and skills and the teacher has to keep abreast of the latest developments not only in their field of specialization but also in areas of educational development and in their continuous in - service orientation. The teacher should proceed keeping in mind :

- Education is a life long process.
- Knowledge can become obsolete every few years unless it is enlarged and enhanced with an input of recent ideas and ideals.
- Education and entertainment are interlinked.
- Teaching & learning behaviour is totally changed.
- Electronic based education & training should be implemented like Computer Aided Vide - Instruction (CAVI), hypermedia, multimedia, CD-ROMS, LANs internet connection and collaborative software environments.

Application of Digital Technology in Practical Classroom Teaching

It is all due to the Digitalization; Black Board is now being replaced by the use the DVD's and wireless local Area Network (WLAN) in college Campuses all over the Country.

- Students search for books in the college library and look them on line from their own laptops.
- Corporate like Narscom, IBM and Intel are also chipping in their contribution to educate teachers & pupils to use internet, web page design and productivity linked software's for encouraging higher order thinking and creativity.
- The Colleges has campus wide wireless local area network. Students and teachers have individual laptops with links to college's library resources & on the encyclopedia.

In regular class room setting, children have a mental block and are under a lot strain. As a result their attention span decrease but now with the help of multimedia, synthesis of sound and picture can be attained. This enables teachers to ease the students more effectively in class room teaching. The aim of education with innovation can only be

achieved by usage of Digital Technology in colleges. This will bring the revolutionary changes to the distance Education to all over India & World as well.

Conclusion

To sum - up, we can say, Digital Technology is not just another subject; it has become a tool in turning education to a learning experience. It will help the teachers to change the teaching & learning style to the classroom that will broaden the chances for students to learn more and to succeed.

Reference

- Bai, Yu, Di Mo, Linxiu Zhang, Matthew Boswell, and Scott Rozelle. 2016. "The Impact of Integrating ICT with Teaching: Evidence from a Randomized Controlled Trial in Rural Schools in China." Computers & Education 96 (May): 1–14.
- Bergman, Peter. 2016a. "Technology Adoption in Education: Usage, Spillovers and Student Achievement." SSRN Scholarly Paper ID 2866866.
- Faber, Benjamin, Rosa Sanchis-Guarner, and Felix Weinhardt. 2015. "ICT and Education: Evidence from Student Home Addresses." NBER Working Paper 21306. National Bureau of
- Keefe, Thomas J. 2003. "Using Technology to Enhance a Course: The Importance of Interaction." Educause Quarterly 1.
- Johnson, D. & Maddux, C. (2003). Technology in education: A twenty-year retrospective. Computers in the Schools, 20(1/2), 1-186.
- Spears, S. A. (2012). Technology-enhanced learning: The effects of 1:1 technology on student performance and motivation (Doctoral thesis). University of West Florida.

****

विकासशील अर्थव्यवस्था में विपणन का महत्व

डॉ0 संजय कुमार खरवार
असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग
राजकीय महाविद्यालय,
ढाढा बुजुर्ग, हाटा,
कुशीनगर

विपणन का सम्बन्ध व्यापारियों के लिए क्रय–विक्रय से है। लेकिन विपणन बहुत ही व्यापक शब्द है। एक कृषक जो कि अशिक्षित रहते हुए भी अपने कृषक कार्यों का स्वयं विपणन करता है। एक महिला या गृहणी विपणन का अर्थ भोजन, सब्जी, वस्त्र आदि खरीदती है तो वह विपणन ही करती है। इस प्रकार एक विक्रेता के लिए विक्रय करना ही विपणन है। कृषक के लिए अपना उपज बाजार में बेचना ही विपणन है। वास्तविक अर्थ में विपणन से आशय क्रय, विक्रय, उत्पादन, नियोजन, विज्ञापन आदि तक सीमित न रहकर एक विस्तृत आर्थिक शब्द है जिसमें वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन से पूर्व की जाने वाली क्रियाओं से लेकर उनके वितरण और आवश्यक विक्रयोपरान्त सेवाओं तक को सम्मिलित किया जाता है।

विपणन के उद्देश्य –

- उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं व इच्छा की खोज करना।
- नवीन वस्तुओं का उत्पादन कर व्यक्तियों का जीवन स्तर ऊँचा उठाना।
- उपभोक्ताओं को संतुष्टि प्रदान करते हुए लाभ प्राप्त करना।
- उपभोक्ताओं तक वस्तुएँ व सेवाएँ सरलता से पहुँचाना।
- अच्छी व प्रमाणित किस्म की वस्तुएँ उपलब्ध कराना।
- निर्यात में वृद्धि करना।
- जन–कल्याण सम्बन्धी कार्यों को करना।
- उपभोक्ताओं से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखना।
- उपभोक्ताओं को उत्तम प्रकार से विक्रय पश्चात् सेवा उपलब्ध कराना।
- सरकार को कर का भुगतान समय पर करना।
- मनुष्यों से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखकर वस्तु व सेवा के सम्बन्ध में क्रिया प्रतिक्रिया की जानकरी करना।
- वस्तु व सेवा का निरन्तर विकास एवं अनुसंधान कार्य करना।

विपणन की विचारधारा –

- **वस्तुओं और सेवाओं के वितरण सम्बन्धी विचारधारा** –पुराने समय में वस्तुओं और सेवाओं के सम्बन्ध में कोई विशेष सम्बन्ध ग्राहक की संतुष्टि से नहीं था लेकिन आज के आधुनिक विचारधारा में ग्राहक के संतुष्टि एवं समय पर विपणन व्यवस्था अति आवश्यक है।
- **उपयोगिताओं के सृजन सम्बन्धी विचारधारा** –यदि सामान कम्पनी में ही पड़ा रहे तो उसकी कोई उपयोगिता नहीं है। उस सामान को समय पर सही स्थान पर

पहुँचाने पर ही उसकी उपयोगिता बढ़ेगी। जिस प्रकार जंगल में लकड़ी का कोई महत्व नही है जैसे ही उस लकड़ी का फर्नीचर तैयार हो जाता है उस समय उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है और मूल्य भी।

- ❖ **जीवन–स्तर प्रदान करने सम्बन्धी विचारधारा** –विपणन से समाज के जीवन–स्तर को उठाने का भी कार्य करता है। नई–नई वस्तुएँ एवं सेवाएँ आने से समाज में रहने वाले लोग उसे पाने के लिए अपनी आय बढ़ाते हैं जिससे कि उनका जीवन–स्तर ऊँचा उठता है। इस प्रकार विपणन का महत्वपूर्ण योगदान है समाज के जीवन–स्तर को उठाने में।
- ❖ **प्रणाली दृष्टिकोण विचारधारा** –इसके अन्तर्गत व्यवसाय की उन सम्पूर्ण व्यवसायिक क्रियाओं से है जो वर्तमान समय में सम्भावित ग्राहकों को उनकी आवश्यकता संतुष्टि की वस्तुओं और सेवाओं के बारे में योजना बनाने, मूल्य निर्धारित करने, संवर्द्धन करने और वितरण करने के लिए किए जाते हैं।
- ❖ **उपभोक्ता संतुष्टि विचारधारा** –उपभोक्ताओं के आवश्यकतानुसार वस्तुएँ बनाना एवं उसको ग्राहकों को उपलब्ध कराना। इसमें इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि ग्राहक की इच्छाएँ एवं आवश्यकताएँ किस प्रकार की हैं उसी अनुरूप वस्तुएँ बाजार में बेचना एवं वे कितना मूल्य देना चाहते हैं इसका भी ध्यान रखा जाता है।

विपणन की प्रकृति –

- ➢ विपणन एक व्यवस्था है जिसमें कई परस्पर–निर्भर तथा परस्पर–क्रियाशील उपव्यवस्थाएँ हैं।
- ➢ विपणन विज्ञान भी है और कला भी। यह मानवीय प्रकृति ही तरह एक जटिल प्रतिभा है।
- ➢ अनुसंधान तथा विकास द्वारा विपणन, अभियन्ता, अभिकल्पना तथा निर्माता के लिए यह निश्चित करता है कि यह उत्पाद में ग्राहक क्या चाहता है, इसके मूल्य के रूप में क्या देना चाहेगा तथा कहाँ, कब इस उत्पाद की आवश्यकता है।
- ➢ विपणन एक प्रबन्धन कार्य है।
- ➢ विपणन एक सार्वभौमिक कार्य है।
- ➢ विपणन का एक मौलिक नियम है परिवर्तन।
- ➢ विपणन जनता तथा समाज के सामने कम्पनी के लक्ष्य प्रतिबिम्बित करता है।
- ➢ विपणन एक अविभाज्य कार्य है।
- ➢ विपणन एक सामाजिक कार्य है।
- ➢ विपणन व्यापार का एक विशिष्टीकरण कार्य है।

विकासशील अर्थव्यवस्था में विपणन का महत्व

1. समाज के लिए विपणन का महत्व –

- ➢ **रोजगार प्रदान करना** –विपणन ने रोजगार अवसरों की वृद्धि में पर्याप्त सहयोग दिया है। आधुनिक समय में उत्पादन की तुलना में विपणन में रोजगार अवसरों में थोड़ी ही अवधि में

चार गुनी वृद्धि हुई है। भारत में रोजगार में लगे हुए व्यक्तियों का लगभग एक–तिहाई भाग विपणन क्षेत्र में लगा हुआ है। इस प्रकार भारत जैसे देश में जहाँ कि बेरोजगारी व्यापक पैमाने पर व्याप्त है, विपणन क्रियाओं का विकास होना विशेष रूप से आवश्यक है।

- **रहन–सहन का स्तर प्रदान करना** –विपणन समाज को जीवन–स्तर प्रदान करता है वास्तव में विपणन का यह दायित्व है कि वह समाज की आवश्यकताओं को पूरा करे और लोगों की विभिन्न आवश्यकताओं और रूचियों को पूरा करने के लिए ही विपणन प्रक्रिया सम्पन्न होती है।
- **ग्राहकों के ज्ञान में वृद्धि** –विपणन ग्राहकों को उनकी छिपी हुई आवश्यकताओं का ज्ञान कराता है और इन आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन एवं सेवाओं का निर्माण करके उनकी जानकारी ग्राहकों को देता है जिससे उन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो सके। विपणन के कारण ग्राहकों को नवीन वस्तुओं के निर्माण एवं उनके प्रयोग की जानकारी भी मिलती है।
- **विपणन लागतों में कमी** –इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वितरण लागत अनिवार्य है, इस प्रकार पूरी तरह इसकी समाप्ति सम्भव नहीं है लेकिन कुशल लागत वितरण द्वारा वितरण लागत को कम अवश्य किया जा सकता है। वितरण लागत में कमी के फलस्वरूप वस्तुओं की कीमत में कमी हो जाती है जिससे उपभोक्ता लाभान्वित होते हैं।
- **मंदी से रक्षा**–मंदी से समाज में बेरोजगारी फैलने लगती है, व्यवसायिक उपक्रम बन्द होने लगते हैं और देश की अर्थव्यवस्था बन्द पड़ जाती है। विपणन समाज को इस समस्या से बचाता है। समाज को मंदी से बचाने के लिए विपणन उत्पादित माल के लिए नवीन बाजारों एवं प्रयोगों की खोज करता है, जिससे उत्पादकों के पास माल के अधिक स्टॉक इकट्ठे न होन पायें। विपणन का आधुनिक विचार ग्राहक अभिमुखी है। इस प्रकार ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं रूचियों के अनुरूप ही माल का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार प्रभावी विपणन से माल एकत्र होने या मंदी फैलने की सम्भावना नहीं रहती।
- **चयन की सुविधा** –विपणन ने समाज को चयन की सुविधा भी दी है। विभिन्न प्रकार के ग्राहकों की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए विभिन्न किस्मों, डिजाइनों, रंगों एवं आकारों में वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। इससे ग्रहकों को चयन की सुविधा मिल जाती है और वे अपनी पसन्द की वस्तु का चुनाव कर सकते हैं।
- **जीवन–स्तर में वृद्धि** –बड़े पैमाने पर उत्पादन को सम्भव करके जिससे कि लागत में कमी आए एवं वितरण लागत में कमी करके, उच्च जीवन स्तर का सृजन करके विपणन समाज के जीवन स्तर में वृद्धि करता है।
- **ग्राहक संतुष्टि** –आधुनिक विपणन विचार का आधार स्तम्भ ग्राहक संतुष्टि है। इसके अन्तर्गत व्यवसाय के सभी निर्णय ग्राहक को केन्द्र बिन्दु मानकर लिए जाते हैं और इस बात का पूरा प्रयास किया जाता है कि ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूर्णरूप से संतुष्ट किया जाए। इस प्रकार विपणन लोगों की आवश्यकताओं को संतुष्ट करके समाज को लाभ पहुँचाता है।

2. निर्माताओं के लिए विपणन का महत्व –

- **नियोजन एवं निर्णयों में सहायक** –एक निर्माता के लिए विपणन का अध्ययन व्यवसाय सम्बन्धी नियोजन एवं निर्णय लेने में सहायक होता है। आजकल व्यवसाय सम्बन्धी निर्णय यह सोचकर नहीं लिया जाता है कि हम कितना उत्पादन कर सकते हैं बल्कि

यह सोचकर लिया जाता है कि उपभोक्ता किस प्रकार की वस्तु किस मात्रा में एवं किस मूल्य पर चाहता है।

- **आय सृजन में सहायक** –विपणन का अध्ययन आय सृजन में सहायक होता है। एक व्यवसाय में आय कमाने का उत्तरदायित्व विपणन विभाग का ही होता है। इस विभाग पर ही व्यवसाय के अन्य सभी विभागनिर्भर रहतें हैं। यदि विपणन विभाग द्वारा कोई गलत निर्णय ले लिया जाता है तो ऐसा निर्ण पूरे व्यवसाय को प्रभावित करता है।
- **वितरण में सहायक** –विपणन का अध्ययन एक निर्माता को यह बताता है कि कम से कम लागत पर तथा अधिक से अधिक सुविधाजनक केन्द्रों से उपभोक्ताओं को वस्तु किस प्रकार प्रदान करनी चाहिए। आधुनिक समय में इस प्रतियोगी युग में वही निर्माता सफल हो सकता है जिसकी विपणन लागत कम से कम होती है।
- **सूचनाओं के आदान–प्रदान में सहायक** –विपणन के द्वारा ही विभिन्न प्रकार की बदलती हुई परिस्थितियों की सुचनाएँ विपणन प्रबन्धक के पास पहुँचती हैं। यदि यह सूचनाएँ न दी जायें तो कोई भी व्यवसाय कुशलतापूर्वक नहीं चल सकता है। आजकल निर्माता एवं उपभोक्ता दोनों एक–दूसरे से हजारों किलोमीटर दूर हैं। अतः इन दोनों को मिलाने का कार्य विपणन द्वारा ही किया जाता है।

3. **अर्थव्यवस्था के लिए विपणन का महत्व** –किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में विपणन का विशेष महत्व होता है। न केवल विकसित अर्थव्यवस्था में बल्कि विकासशील अर्थव्यवस्था में भी विकास की गति को तिव्रता प्रदान करने हेतु विपणन प्रणाली का सशक्त एवं सक्षम होना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे–जैसे किसी देश का औद्योगीकरण और नगरीकरण होता चला जाता है, वैसे–वैसे विपणन का महत्व भी बढ़ता चला जाता है। एक ऐसे समाज में जहाँ व्यक्ति उतने ही खाद्यान्न का उत्पादन करता है जितना कि उसका उपभोग है, उतने ही वस्त्रों का निर्माण करता है जितने कि वह पहनता है। आधुनिक समय में मानवीय आवश्यकताएँ असीमित हैं। उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है। अतः आर्थिक प्रक्रिया में विपणन अनिवार्य हो गया है। जैसे–जैसे उत्पादन कुशलता बढ़ती चली जायेगी, उसके प्रभावी वितरण एवं विक्रय उपायों की खोज हेतु विपणन का महत्व भी बढ़ता चला जायेगा।
4. **उपभोक्ताओं के लिए विपणन का महत्व** –उपभोक्ताओं के लिए विपणन का अत्यधिक महत्व है। उपभोक्ताओं को उस आर्थिक प्रणाली की जानकारी होनी चाहिए जिसका कि वह एक अंग है। वस्तु को खरीदते समय उपभोक्ताओं को विपणन के बारे में जानकारी होनी चाहिए। विपणन के ज्ञान के कारण ही हम देखते हैं कि भारत में उपभोक्ता सहकारी संस्थाओं में बराबर वृद्धि हो रही है।

सन्दर्भ :

1. शर्मा, डॉ0 एफ0सी0 : विपणन प्रबन्ध, पृ0 15.
2. अग्रवाल, आर0सी0 एवं डॉ0 कोठारी, एन0एस0, विपणन प्रबन्ध,पृ0 02, 18.
3. शुक्ल, डॉ0 अजीत कुमार : विपणन प्रबन्ध, पृ0 11–
4. जैन, डॉ0 एस0सी0 : विपणन के सिद्धान्त, पृ0 05, 06, 14.
5. अग्रवाल, आर0सी0 एवं डॉ0 कोठारी, एन0एस0, विपणन के सिद्धान्त, पृ0 15, 16.

झारखण्ड में नक्सलवाद की समस्या एवं समाधानः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. मिथिलेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची

सारांश

नक्सलवाद मूल रूप से कानूनी समस्या है या विषमता से उत्पन्न लावा है। विचारकों का एक वर्ग जहाँ नक्सलवाद को आतंकवाद जैसी गतिविधियों से जोड़कर इसे देश की आतंरिक सुरक्षा के लिये सबसे बड़ी चुनौती मानता है तो दूसरा वर्ग इसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विषमताओं एवं दमन–शोषण की पीड़ा से उपजा एक स्वतः स्फूर्त विद्रोह समझकर इसका पक्षपोषण करता है।

"हाँ, अब हमने उठा ली हैं तुम्हारे खिलाफ़ बंदूक,
तुम जो समझते हो तमंचों की भाषा"

नक्सलियों का कहना है कि वे उन आदिवासियों और गरीबों के लिये लड़ रहे हैं, जिनकी सरकार ने दशकों से अनदेखी की है। वे जमीन के अधिकार एवं संसाधनों के वितरण के संघर्ष में स्थानीय सरोकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। माओवाद प्रभावित अधिकतर इलाके आदिवासी बहुल हैं और यहाँ जीवनयापन की बुनियादी सुविधाएँ तक उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन इन इलाकों की प्राकृतिक संपदा के दोहन में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की कंपनियों ने कोई कमी नहीं छोड़ी है। यहाँ न सड़कें हैं, न पीने के लिये पानी की व्यवस्था, न शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ और न ही रोजगार के अवसर।

नक्सलवाद के उभार के आर्थिक कारण भी रहे हैं। नक्सली सरकार के विकास कार्यों के कार्यान्वयन में बाधा उत्पन्न करते हैं। वे आदिवासी क्षेत्रों का विकास नहीं होने देते और उन्हें सरकार के खिलाफ भड़काते हैं। वे लोगों से वसूली करते हैं एवं समांतर अदालतें लगाते हैं।सामाजिक विषमता ही वर्ग संघर्ष की जननी है। आजादी के बाद भी इस विषमता में कोई कमी नहीं आयी। नक्सलियों के लिये यह एक बड़ा मानसिक हथियार है।शासन की जनहित के लिये बनने वाली योजनाओं के निर्माण एवं उनके क्रियान्वयन में गंभीरता, निष्ठा व पारदर्शिता का अभाव रहता है जिससे वंचितों को भड़काने और नक्सलियों की नई पौध तैयार करने के लिये इन माओवादियों को अच्छा बहाना मिल जाता है। आम जनता को अब यह समझ में आने लगा है कि सत्ता के केंद्र में बैठे लोगों में न तो सामाजिक विषमतायें समाप्त करने, न भ्रष्टाचार को प्रश्रय देना बंद करने और न ही नक्सली समस्या के उन्मूलन के प्रति लेशमात्र भी राजनीतिक इच्छाशक्ति है। आर्थिक घोटालों के ज्वार ने नक्सलियों को देश में कुछ भी करने की मानसिक स्वतंत्रता प्रदान कर दी है। इस शोध पत्र के माध्यम से झारखण्ड में नक्सलियों के उभार और उसके समाधान पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

मुख्य विंदु– मार्क्सवाद, अभिजन वर्ग, नौकरशाही, एम0सी0सी0, पी0डब्ल्यू0जी0, एम0जी0एस, एस0जी0एस0

नक्सलवाद, नक्सलवाड़ी शब्द से बना है, जिसका सम्बन्ध पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले सिलीगुड़ी के निकट एक गाँव नक्सलवाड़ी से है। इसी गाँव में एक आदिवासी युवक विमल ने अपनी भूमि जोतने का अधिकार न्यायालय से प्राप्त किया तो स्थानीय भू– स्वामियों ने अपने गुण्डों के साथ उस पर आक्रमण कर दिया। "यह घटना 02 मार्च 1967 को घटित हुयी। उस क्षेत्र के आदिवासियों मे इस घटना से जबरदस्त प्रतिक्रिया हुयी और बदले की कार्यवाही करते हुए उन्होने अपनी भूमि पर कब्जा करना प्रारम्भ कर दिया। इसके साथ ही साथ इस आन्दोलन ने एक विद्रोह का रुप धारण कर लिया। इसमें एक सब–इंस्पेक्टर तथा नौं आदिवासियों की मृत्यु हो गयी। "[1] परिणाम स्वरुप दो माह के भीतर ही आंध्रप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, बिहार, तमिलनाडु, केरल, उत्तर प्रदेश तथा जम्मू काशमीर में सी0पी0आई (एम0) की स्थानीय इकाइयों से सम्बन्धित साम्यवादी क्रांतिकारीयों का इसे भारी समर्थन मिला। इसी घटना से नक्सलवाद के संगठन एवं नक्सलवादी विचारधारा का उद्भव माना जाता है।

नक्सलवाद हिसांत्मक संघर्ष का प्रतिरुप है, जो भूमिहीन श्रमिकों और जनजाति लोगों के द्वारा भू–स्वामियों (जमीदारों) व अन्य के विरूद्ध संघर्ष है। नक्सलवादियों का तर्क है कि वे वर्ग विहिन समाज की स्थापना के लिए संघर्ष कर रहे है। जब कि अन्य पक्ष इन्हें देश के आन्तरिक सुरक्षा व शाति कें लिए बाधक माने जाते है और इनके संघर्ष को वर्ग संघर्ष मानते है। नक्सलवाद मूल रूप से मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष सिद्धान्त पर आधारित है। यह एक सतत् चलने वाली संघर्ष की प्रक्रिया है। इसके तहत शोषित उपेक्षित एवं दलित वर्ग अपने संघर्ष शक्ति से पूँजिवादियों, जमीदारों, साहूकारों एवं शासकों को शिकार बनाते है, और शासक वर्ग की राजसत्ता को लूटना अपना अधिकार मानते है। नक्सलवादियों के अधिकार को प्राप्त करने मे जो बाधा उत्पन्न करता या पहुँचाता है, उसे समाप्त कर देना चाहिए, तभी सर्वहारा शासन तंत्र की स्थापना हो सकेगी, ऐसी इनकी धारणा है। यद्यपि इनका वास्तविक उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समानता स्थापित करना है, किन्तु अकारण हिंसा, अपराध एवं उग्रवाद अपनाने के कारण यह हमारे समाज के लिए एक बड़ी चुनौती एवं सुरक्षा की दृष्टि से एक सामयिक समस्या के रूप में उभरा है।

नक्सलवाद का इतिहास

"सी0पी0एम0 की दार्जिलिंग इकाई के जिला सचिव चारू मजूमदार द्वारा तैयार किया गया 'तराई दस्तावेज' नक्सलबाड़ी दमन के विरुद्ध प्रतिरोध का बुनियादी आधार पत्र था। दरअसल 25 मई 1967 को पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाड़ी थाने में उस वक्त बड़ी घटना घटी जब चाय बगान मालिकों एवं पुलिस के गठजोड़ से हुए हमले में 9 महिलाओं समेत 2 बच्चे मारे गये। नक्सलबाड़ी की इस घटना से देश की राजनीतिक बिरादरी खासकर कम्युनिष्ट पार्टियों के बीच भूचाल मच गया।"[2] 25 मई 1967 की इस घटना से उस क्षेत्र के आदिवासियों में जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। परिणामस्वरूप आदिवासियों ने भूस्वामियों के खिलाफ हथियार उठा लिये। कालांतर में यह आन्दोलन पश्चिम बंगाल से होते हुए आंध्र प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु, उड़ीसा आदि राज्यों में फैल गया। यहाँ तक कि समाज का बौद्धिक वर्ग भी घर एवं शिक्षण संस्थाओं को छोड़कर इस आंदोलन से जुड़ गये। इनका लक्ष्य एक वर्गविहीन नयी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है।

नक्सलवादी आंदोलन से जुड़े लोगों का मानना है कि वर्त्तमान राजसत्ता नौकरशाहों, भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, पूंजीपतियों, भू–स्वामियों तथा तथाकथित दलालों के हाथों में है। ये सभी मिलकर विशाल समूह वाले कृषक मजदूर एवं अन्य दलित, आदिवासियों पर अत्याचार कर रहे हैं। अतः नक्सलियों के मुताबिक वे पूँजीवादी सरकार की बाजारवादी व समाज में गैर–बराबरी व नक्सलवादी

आंदोलन के संस्थापक नेताओं में कानू सान्याल, चारू मजूमदार, सीता रमैया, नागभूषण पटनायक आदि का नाम उल्लेखनीय है। जहाँ तक नक्सलवादी आंदोलन के लक्ष्य का सवाल है, नक्सलवाद का लक्ष्य समाज से गैर–बराबरी को समाप्त कर ऐसे समरस समाज का निर्माण करने से है जहाँ न अन्याय, न शोषण और न ही उत्पीड़न के लिए कोई स्थान हो। सर्वहारा वर्ग की सत्ता कायम करना नक्सलवाद का प्रमुख लक्ष्य है।

नक्सलवाद के बाद में विचारकों की राय

if we try to dig further, it can be easily
conceived that the case of Naxalism involves several social and psychological factors also (Chakravarti, 2010)

चक्रवर्ती 2010 के अनुसार "नक्सलवाद के अधिकांश कारणों में सामाजिक व मानसिक महत्वपूर्ण होते हैं।"[3]

गुप्ता 2008 के अनुसार "यद्यपी नक्सलवादी नेताओं की मानसिक स्थिति सही प्रतित नहीं होती पर इसके बावजूद वे सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुरूप लोगों से सामंजस्य स्थापित कर पाने में सफल हो पाये हैं।"[4]

विक्टरस्कॉप 2005 के अनुसार "नक्सलवादी व्यवस्था में जब उच्च जातियों की भागीदारी बढी है तो इससे नक्सलवाद को एक नयी धार मिली है।"[5]

if we try to dig further, it can be easily
conceived that the case of Naxalism involves several social and psychological factors also (Chakravarti, 2010)

बंदुरा एवं मैक क्लीलैंड ने 1977 के अध्ययन में बताया है कि "नक्सलवाद भी मीडिया के एक दूसरे स्वरूप का सहारा लेता है जिसमें पंपलेट का वितरण व अन्य साहित्यों को लोगों तक पहुंचाना है।"[6]

नक्सलवाद की उत्पति के कारण:

मानव और पशु में सबसे बड़ा अंतर यह है कि मानव के पास सोचने की शक्ति होती है। अपने विचारों को व्यक्त कर अपनी भावना को जगजाहिर करने की क्षमता उसे पशु से भिन्न बनाता है। सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही बुर्जुआ वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग का शोषण आरंभ हो गया। शोषण का यह अंतहीन सिलसिला आज भी कायम है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् समाजवादी विचारधारा का काफी तीव्र गति से विकास हुआ। इसके साथ ही वर्ग संघर्ष पूरे भारत में आरंभ हो गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी सामंतवाद भारत में लम्बे समय तक कायम रहा। सामंतवादी व्यवस्था के पोषक लोगों द्वारा सबसे अधिक प्रताड़ना उन्हीं लोगों को दी गई जो सामाजिक सोपान के सबसे निचले पायदान पर थे। प्रसिद्ध कम्युनिष्ट चीनी नेता माओ का मानना था कि "(क) राजनीतिक सत्ता बन्दूक की नली से निकलती है। (ख) राजनीति रक्तपात रहित एक युद्ध है और युद्ध रक्तपात युक्त एक राजनीति है। माओ के उपरोक्त दोनों सिद्धांत नक्सलवादी नेताओं के लिए आदर्श साबित हुए।"[7]

आंदोलन की शुरूआत–सामाजिक असमानता के गर्भ से उत्पन्न नक्सलवाद एक विचार नहीं अपितु एक विचारधारा है। नक्सलवादी आंदोलन के प्रमुख अगुआ कानू सान्याल ने अपनी रपट "'रिपोर्ट ऑन पिंजेंट्स मूवमेंट इन तराई रिजन' में लिखा है कि किसानों ने संघर्ष किया है क्रांतिकारी राज्यतंत्र के सशस्त्र हमलों के खिलाफ उनके इस उक्ति से स्पष्ट है कि यह आंदोलन मुख्यतः किसानों द्वारा सामंतवाद के खिलाफ किया गया आंदोलन है जिसमें मुख्यतः भूमिहीन किसान, मजदूर, आदिवासी, दलित एवं ऐसे असंख्य शोषित, पीड़ित एवं उपेक्षित लोग शामिल हैं जिन्होंने अन्याय को

सहने से इनकार कर दिया एवं अहिंसा के रास्ते का परित्याग कर हिंसा का सहारा लेना आरंभ कर दिया।"[8] नक्सलवादी आंदोलन के व्यापक चार बिन्दु– 1. जल, जंगल, जीवन 2. आदिवासी एवं पिछड़े इलाकों में विकासात्मक कार्यों का अभाव 3. प्रशासनिक असफलता 4. सामाजिक तिरस्कार एवं उपेक्षा नक्सलवादी आंदोलन के चरण–नक्सलवादी आंदोललन के इतिहास का अवलोकन करने के पश्चात् नक्सलवादी आंदोलन को मुख्यतः तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्रथम चरण–इसकी काल अवधि 1967 से 1980 तक मानी जाती है। यह शुरूआती दौर या जब नक्सलवाद को व्यवस्था के विद्रोह के रूप में एक बुद्धिजीवी आंदोलन के रूप में देखा गया। यह चरण आदर्शवादी एवं वैचारिक आंदोलन का चरण माना जाता है।

2. द्वितीय चरण–इसकी काल अवधि 1980 से 2004 तक मानी जाती है। इस अवधि में नक्सलियों ने सशस्त्र बलों पर हमले आरंभ कर दिए। इसी चरण में नक्सली आंदोलन का सीमा–विस्तार सर्वाधिक हुआ। पूरे भारत में लाल गलियारे का निर्माण होने लगा जो पश्चिम बंगाल से होते हुए बिहार, झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ. अध्यक्ष नंदकुमार पटेल और उनके बेटे दिनेश पटेल, पूर्व केन्द्रीय मंत्री विद्याचरण शुक्ल व आठ अन्य लोग मारे गये। इस हमले के बाद से स्पष्ट हो जाता है कि नक्सलवादी अपने मूल उद्देश्य से भटककर उनलोगों को निशाना बनाने लगे हैं जो नीति–नियंता, राजनीतिक नेतृत्वकर्त्ता एवं राजनीतिक पार्टियों से जुड़े हुए हैं। नक्सलवाद का प्रभाव–नक्सलवाद का सर्वाधिक प्रभाव देश के आठ बड़े राज्यों में देखा जा सकता है। इन राज्यों में पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र एवं छत्तीसगढ. हैं।

3. तृतीय चरण– 2004 से अभी तक की मानी जाती है। जिसमें सशस्त्र संघर्ष के साथ साथ नक्सलियों ने सामाजिक संरचना व इसके परिस्थितियों को भी संगठित करने का प्रयास आरंभ कर दिया है।

झारखंड में नक्सलवाद :

नक्सलवाद के जन्म के पीछे सबसे बुनियादी कारण राज्य में मौजूद सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी है। नक्सलवाद उन कुछ वैकल्पिक स्वरूपो मे से है जिसमे इस दारै के रहन–सहन के हालात से जनता में असंतोष की अभिव्यक्ति पायी जाती है। यह खनिज सम्पदा से समृद्ध है, परन्तु मानव शक्ति के द्वारा इस प्राकृतिक सम्पदा को सही तरह से उपयोग नहीं किया जाता है तो इससे सामाजिक असंतुलन पैदा हो गया है। नक्सलवाद में व्याप्त घोर आर्थिक व सामाजिक विषमता, भूमि का असमान वितरण, से उचित मजदूरी की मांग, सामंती शोषण के खिलाफ एक शोषित वर्ग, निम्न वर्ग व किसान वर्ग का आन्दोलन है। इस आंदोलन के उदय में गरीबी, आर्थिक विषमता, भूमि का वितरण ठीक ढंग से लागू न होना प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएं, बेरोजगारी, अशिक्षा, जातिगत विषमताएं आदि प्रमुख हैं।

"झारखण्ड में इस आंदोलन की शुरूआत 1976–77 ई से प.बंगाल के सीमावर्ती जिलों जैसे दुमका, देवघर, गोडडा एवं साहेबगंज से मानी जाती है। वर्तमान समय में झारखंड के लगभग 20 जिले नक्सलवाद से प्रभावित है।"[9] विशेषकर खूंटी, तोरपा, गुमला, पलामू एवं सरायकेला व खरसावां जैसे जिले आते हैं। झारखण्ड में नक्सलवादी आंदोलन से मुख्य रूप से पूर्वी क्षेत्र अधिक प्रभावित है। अगर इस क्षेत्र में नक्सलवाद के उदय के कारणों का अध्ययन करें तो पता चलता है कि इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था गहरे संकट के दौर से गुजर रही है। यहां की विकास दर की कमी मुख्य रूप से जिम्मेदार है। यहां खेती के विकास के लिए बिजली, पानी, खाद और बीज जैसे संसाधनों को बढाने की जरूरत हैं लेकिन पूंजी निवेश नहीं हो पाना इसके लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है। किसानों को

उनकी उपज का लागत मूल्य भी नहीं मिल पा रहा हे। मूल्य हासिल करने के लिए बार–बार आंदोलन का रास्ता अपनाने के लिए मजबूर किये जाते हैं। नये उद्योगों को कौन कहें, यहां पर पहले से जो अन्य परंपरागत उद्योग धंधे भी सरकार के आर्थिक औद्योगिक नीतियों की भेंट चढ रहे है। हार्वेस्टर जेसीवी मशीन और कृषि एवं मजदूरी के क्षेत्र में बढते मशीनीकरण के अन्य उपायों के चलते खेतीहर मजदूर और श्रमिक वर्ग बडे पैमाने पर बेरोजगार हो रहे हैं। जिसके कारण दिन प्रतिदिन बढावा मिलता जा रहा है।

झारखण्ड में बढते हुए नक्सलवाद के लिए निम्नांकित परिस्थितियों एवं कारणों को उतरदायी माना जाता है–

1. गरीबी–

प्रभावित क्षेत्र में अधिकतर कमजारे व गरीब तपके लोग रहते है। इसमें चेरो, अगरिया व अन्य जनजातीय समूह के लोग काफी गरीब है। जीवोकोपार्जन के लिए परिवार के सभी सदस्य प्रायः बनोत्पाद जैसे– महुआ, तेन्दपत्ता, लकड़ी, जड़ी– बूटी आदि पर अपना जीवन निर्वाह करते है। एक गावं से दूसरे गांव के बीच अधिक दूरी होने के कारण भी इन्हे सामान्य कृषि उत्पाद आदि का लाभ नहीं मिल पाता है। इसी आर्थिक तंगी का लाभ उठाकर नक्सलवादी इन्हें वर्तमान व्यवस्था के विरूद्ध भड़काने में सफल हो जाते है।

2. अषिक्षा

अधिकांश प्रभावित क्षेत्रों में कोई भी बेसिक स्कूल तक नहीं है। जिसके कारण ज्यादातर लागे अशिक्षित है। इन्ही अशिक्षित लोग के बौद्धिक स्तर का लाभ उठाते हुए नक्सलवादी इन्हें अपनी विचारधारा से प्रभावित करने में सफल हो जाते है।

3. प्राथमिक स्वास्थ केन्द्र/चिकित्सा सुविधा का अभाव

नक्सल प्रभावित क्षेत्र में जो स्वास्थ केन्द्र उपलब्ध है, वे पर्याप्त नहीं है। चिकित्सा हेतु वहां के लोगों को काफी दूर जाना पड़ता है। इन क्षेत्रों के एक ग्राम से दूसरे ग्राम की दूरी इतनी अधिक है कि आपात काल मे बीमार व्यक्ति प्राथमिक स्वास्थ केन्द्र तक नहीं पहुँच पाते है और अंधिविश्वास के चलते झाड़–फूक के लिए ओझाओं के चक्कर में पड़ जाते है जिससे उनकी जान तक चली जाती है नक्सलवादी इस असुविधा के लिए बढ़ा–चढाकर सरकारों को दोषी बताते हैं। और उनका मन बदल पाने में सफल हो जाते हैं।

4. आवागमन के साधनों एवं मार्गों की कमी

झारखण्ड एक पहाडी व दुर्गम क्षेत्रों से घिरा हुआ प्रदेश है। यहां की भू आकृति वनों व वनोपजों पर आधारित अर्थव्यवस्था के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। जिसके फलस्वरूप

पहाड़ी, पठारी एवं दुरूह क्षेत्र होने के कारण विकास कार्य बाधित होता है। यही नही, आवश्यक वस्तुओं की कमी, आपूर्ति, जन संपर्क एवं सुरक्षा व्यवस्था में सदैव बाधा उत्पन्न होती है। पहाड़ी एवं दुर्गम क्षत्रे का लाभ उठाकर नक्सलवादी अपने प्रभाव क्षेत्र का विकास करने में सफल होते है। स्थानीय प्रशासन की त्वरित उपलब्धता न होने के कारण एक पक्ष नक्सलवादी तत्वों का सहारा लेते है। इन्ही सब कारणों से नक्सलवादियों के मनोबल में विगत कुछ वर्षों से वृद्धि परिलक्षित हुयी है।

5. आर्थिक स्थिति के कारण

नगण्य मजदूरी नक्सलियों ने इस क्षेत्र के आदिवासी व जनजाति के लोगों को मिलने वाली कम मजदूरी को भी अस्त्र बनाया एवं विकास कार्य में लगे ठेकेदारों की सम्पत्ति जलाकर भय एवं आंतक का वातावरण बनाया। प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा यदा कदा लिए गये कठोर कदम को भी कारण

माना जा सकता है। आदिवासी/जनजातियों के लोग अधिकांशत मवेंशियों की खरीद एवं अन्य प्रयोजनों के लिए बैंक से कर्ज लेते है पर इस कर्ज का अधिकांश भाग बिचौलियो द्वारा हड़प लिया जाता है। जब इन लोगों पर बैंक के कर्ज की अदायगी का दबाव डाला जाता है तब नक्सलवादी इन्हें कर्ज से मुक्ति दिलाने का आश्वासन देकर अपने गिरोह में शामिल करने में सफल हो जाते है।

6.स्थानीय ठेकेदारों द्वारा शोषण

स्थानीय पत्थर तथा वन उत्पाद में लगे ठेकेदारों द्वारा जनजाति के लोगों को मजदूरी सीमापरातं स्थानों की तुलना में कम दी जाती है। इस स्थिति का विशेष लाभ उठाकर नक्सलवादी स्थानीय नागरिको को वर्तमान व्यवस्था के विरूद्ध भड़कने में कामयाब हो जाते है।

7.भूमि/वन संबंधी समस्या

प्रभावित क्षेत्र का ज्यादातार हिस्सा रक्षित वन से आच्छादित है आदिवासी खेती करना चाहते है लेकिन भूखन्ड वन विभाग में दर्ज होने के कारण उसका बंदोबस्त उनके हक में नहीं किया

जा सकता है। इस बात को लेकर भी इनमें कभी–कभी अंसतोष पैदा हो जाता है। यदा–यदा जनजातियों द्वारा वृक्ष लगाने व काटने के कारण जो वन विभाग द्वारा कार्यवाही की जाती है उससे भी इनमें असंतोष पैदा होता है। जनजातियों की यह धारणा है कि उनके कुछ पारम्परिक अधिकार है, जिनसे उन्हें वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

8.जल संसाधनों की कमी

प्रभावित सीमावर्ती क्षेत्र पेयजल व कृषि हेतु पानी की कमी से प्रभावित है। जहां अधिकांश क्षेत्रों में हैण्ड पम्प द्वारा पेय जल की व्यवस्था की गयी है परन्तु आबादी के बिखराव के कारण मानक के अनुसार हैण्डपम्प नही लगाए जा सके है इस कारण भी जनजातियों में असंतोष की भावना पैदा होती है।

नक्सली की संरचना व संगठनः

अभी तक झारखंड में मुख्य रूप से तीन नक्सलवादी संगठनों के संरचना की बात प्रकाश में आयी है जिनका विवरण निम्न है–"

1. एम.सी.सी. (माओवादी कम्यूनिस्ट सेन्टर)
2. पी.डब्लू.जी (पीपुल्स वार ग्रुप)

3. सी.पी.एम.एल (लिबरेशन) 21 सितम्बर, 2004 को एम.सी.सी. व पी.डब्लू.जी का विलय हो गया। और एक नयी पार्टी भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (माआवे ादी) का गठन हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यवस्थागत अन्याय, भूमिवाद, विकास का अभाव, बेरोजगारी, गरीबी, भ्रष्टाचार आदि इस उग्रवाद को ऊर्जा प्रदान कर रहे है। वे जानते है कि उनकी ताकत का स्रोत चारो तरफ गहराती और फैलती सामाजिक– आर्थिक विषमताएँ है।"[10]

"एम.सी.सी. (माओवादी कम्यूनिस्ट सेन्टर) : सी.पी.आई. (एम.एल.) के गठन 1 मई 1969 के बाद, 20 अक्टूबर, 1969 में माओवादी कम्यूनिस्ट सेंटर का गठन हुआ। जिसके संस्थापक कामरेड कानाई चटर्जी, अमूल्य सेन एवं चंद्रशेखर दास थे। कामरेड कानाई चटर्जी द्वारा लिखित 'रणनीति व कार्यनीति' नामक एक बुनियाद दस्तावेज मई 1969 में प्रकाशित हुआ, इसमें कहां गया कि संशोधानवादियों से लाइनगत रूप से स्पष्ट विभाजन रेखा खींच लेने के साथ–साथ जनफौज व आधार क्षेत्र का निर्माण हमारे सभी काम–काज का केन्द्र बिन्दु होगा।"[11] कनाईचटर्जी का दूसरा महत्वपूर्ण दस्तावेज 'सशस्त्र कृषि क्रान्ति में कूद पड़े, फौजी व आधार क्षेत्र के निर्माण के काम को

तेज करे' सन् 1970 में प्रकाशित किया गया। तीसरा महत्वपूर्ण दस्तावेज 'संसदीय राजनीत तथा आत्म–समर्पणवाद के खिलाफ संघर्ष को जोरदार करें, कृषि क्रान्ति व दीर्घकालीन लोकयुद्ध के झंडे को ऊंचा उठाये रखें प्रकाशित हुआ। उपरोक्त दस्तावेज एम.सी.सी. के राजनीतिक काम–काज के बुनियादी आधार एवं दिशा–निर्देशक रहे है। "इस संगठन की वर्तमान में कैडरो की संख्या लगभग 3300 है एवं इनके पास 65 आर्म्ड स्क्वार्ड (सभी बिहार एवं झारखण्ड में) है इनके पास 40 ए0.के0. 47, 109 एस.एल.आर., 13 कार्बाइन, 22 स्टेनगन व 2 एल.एम.जी. है। यह संख्या शस्त्र बलो से लूटे हथियारों के आधार पर है, इसके अलावा इनके पास चीन–नेपाल के रास्ते हथियार आ रहे है जो अत्याधुनिक है।"[12]

पी.डब्लू.जी. (सी.पी.एम.एल. पीपुल्स वार ग्रुप) : पी.डब्लू.जी की स्थापना वर्ष 1980 में हुई। विलय से पहले यह देश का सबसे बड़ा नक्सलवादी संगठन है। आन्ध्र प्रदेश सरकार के प्रतिबंध के बावजूद ये अपनी गतिविधयों को लगातार बनाये हुए है। इनकी गतिविधियों का मुख्य केन्द्र आन्ध्र प्रदेश तिलंगाना क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार, तमिलनाडू एवं कर्नाटक में भी यह ग्रुप सक्रीय है। बिहार से ही यह संगठन उत्तर प्रदेश में अपनी गतिविधियां संचालित करता है। "पी.डब्लू. जी. के 117 दल (आर्म्ड स्कवाड) है। इनके पास कुल 900 हथियार है। जिसमें 515 ए.के. 47 भी सम्मिलित है एवं भारी मात्रा में विस्फोटक सामाग्री है। यह संगठन तीन भागों में बंटा है।"[13]

(अ). प्लाटून इसमें अत्यन्त ही दक्ष नक्सलियो का समूह रहता है जिनकी संख्या लगभग 30 होती है। जिसमें 4 एस.एल.आर., चार– 303 और सात–315 राइफल्स, दो डी.बी.बी.एल., तथा दो या तीन सिंगल बैरल और पर्याप्त मात्रा में विस्फोट सामाग्री रहती है।

(ब). "एस.जी.एस. (स्पेशल गुरिल्ला स्कवायड) इसमें नक्सलियों की संख्या लगभग 15 होती है। इनके पास दो एस.एल.आर., दो– 315 राइफल एवं दो या तीन डी.बी.बी.एल., दो या तीन सिंगल बैरल बन्दूकें होती है। इसके अतिरिक्त इनके पास पर्याप्त मात्र में विस्फोटक सामाग्री होती है। इनको 'स्पेशल गुरिल्ला रक्वायड' के नाम से पुकारा जाता है।

(स).एल.जी.एस. (लोकल गुरिल्ला स्कायड) इसमें नक्सलियों की संख्या 8–9 होती है। इनके पास दो– 303, दो 305 राइफल्स, दो या तीन डी0 बी0 बी0 एल0, दो या तीन सिंगल बैरल बन्दूके होती है। इसके अतिरिक्त इनके पास पर्याप्त मात्रा में विस्फोटक सामाग्री होती है।"[14] इनको 'लोकल गुरिल्ला स्क्वायड' के नाम से जाना जाता है। पी.डब्लू.जी., गुरिल्ला युद्ध नीति द्वारा आक्रमण करते है। इनके संगठन में महिलायें भी है। केन्द्र व राज्य सरकार के विरूद्ध जनता को भड़काते है और अपने को क्रान्तिकारी की संज्ञा देते है। नेपाल, पेरू और फिलिपीन्स में इनके संगठन को अलग–अलग नामों से जाना जाता है।

नक्सल समस्या के समाधान में आने वाली चुनौतियाँ

दरअसल नक्सलवाद सामाजिक–आर्थिक कारणों से उपजा था। आदिवासी गरीबी और बेरोजगारी के कारण एक निचले स्तर की जीवनशैली जीने को मजबूर हैं। स्वास्थ्य–सुविधा के अभाव में गंभीर बीमारियों से जूझते इन क्षेत्रों में असामयिक मौत कोई आश्चर्य की बात नहीं। आदिवासियों का विकास करने के बजाय, उन्हें शिक्षा, चिकित्सा सेवा और रोजगार देने के बजाय उन्हें परेशान करने के नए–नए कानून बनाए जाते हैं।

- आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार, खेती की दुर्दशा अभी भी जस की तस बनी हुई है। यकीनन इस तरह की समस्यायों में हमेशा असंतोष के बीज होते हैं, जिनमें विद्रोह करने की क्षमता होती है।

- इन्हीं असंतोषों की वजह से ही नक्सलवादी सोच को बढ़ावा मिल रहा है। इससे बड़ी विडंबना ये है कि हमारी सरकारें शायद इस समस्या के सभी संभावित पहलुओं पर विचार नहीं कर रही।
- इसके साथ ही बुनियादी ढाँचे का अभाव तथा प्रशिक्षित मानव संसाधनों और संचार सुविधाओं की कमी है।
- नक्सलियों द्वारा अंतर्राज्यीय सीमा का लाभ उठाया जाना तथा केंद्र और राज्यों तथा अन्य राज्यों के बीच आपसी समन्वय का अभाव।

नक्सल समस्या के समाधान

नक्सलवाद को पनपने एवं पोषण देने में जिन तत्त्वों की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है उसमें गरीबी, बेरोजगारी, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, एक बड़े वर्ग के समुचित विकास का अभाव, विस्थापन की समस्या आदि प्रमुख कारण है। इसमें कतई संदेह नहीं है कि नक्सलवाद देश के समक्ष एक गंभीर चुनौती है। 1967 से आरंभ हुए नक्सलवादी आंदोलन अपने आरंभिक काल से 53 वर्षों की यात्रा पूरी कर चुका है। इस लम्बी अवधि में भी न तो नक्सलवाद का प्रयोजन पूरा हो सका और न ही इसका समाधान हो सका। हाँ, नक्सलवादी विचारधारा एवं सरकारी प्रयासों में अंतर अवश्य दृष्टिगोचर हुए हैं। "एक विचारधारा के रूप में विद्यमान 'नक्सलवाद' आज भी जीवित है। उसने अपना रूप अवश्य बदल लिया है। भूमिहीन किसान, मजदूरों का सामंतों के विरुद्ध प्रारंभ किये गये आंदोलन आज सरकार एवं सुरक्षा बलों के विरुद्ध आंदोलन बनकर रह गया है।"[15] नक्सलियो ं द्वारा समानांतर सरकार का गठन यह बताने के लिए पर्याप्त है कि नक्सलियों का संविधान से विश्वास उठ सा गया है। यह देश के लिए गंभीर समस्या है। आवश्यकता इस बात की है कि नक्सली गतिविधि में संलिप्त लोग एवं सरकारी महकमा आमने–सामने बैठकर समस्या का स्थायी समाधान निकालें। यही वक्त की माँग है, सशक्त भारत की परिकल्पना को साकार रूप देने के लिए यह आवश्यक है।

नक्सलवाद की समस्या भारत की आन्तरिक समस्याओं में से एक जटिल एवं गम्भीर समस्या है, जिसका हल किसी पक्ष द्वारा हिंसात्मक तरिके अपना कर नहीं किया जा सकता है। इसके समाधान हेतु दलित, शोषित एवं जनजातीय समुदायों के हितो, संस्कृति एवं परम्परागत अधिकारो की रक्षा करते हुए उनके विकास को धरातल पर मुर्त रूप लेने वाली योजना बनाकर क्रियान्वित करना होगा। जिससे वे शिक्षित एवं सम्पन्न होकर स्वार्थी तत्वों द्वारा किये जाने वाले झुठे प्रचार– प्रसार व दुरूपयोग से अपनी रक्षा कर सके। इसके अलावा भी नक्सलवाद को रोकने के सन्दर्भ में निम्नलिखित प्रयास किये जा सकते है–

1. नक्सलवाद के सामाजिक–आर्थिक कारणों से निपटने की कुंजी सुशासन और विकास कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन में निहित है।
2. केन्द्र सरकार नक्सली हिंसा को कानून– व्यवस्था की समस्या मानती है, जबकि इसे सामाजिक–आर्थिक समस्या के रूप में सुलझाने की जरूरत है।
3. नक्सली खतरे से राजनीतिक सुरक्षा एवं विकास तथा लाके अवधारणा प्रवर्धन के मोर्चों पर एक साथ समग्र रूप से निपटना चाहिए।
4. जब तक नक्सलवादी हिंसा एवं शस्त्रों का परित्याग करने के लिए सहमत नहीं होते, तब तक प्रभावित राज्यों द्वारा उनसे किसी भी प्रकार की शान्ति वार्ता नहीं की जानी चाहिए।
5. राजनीतिक दलों को नक्सलवाद से प्रभावित राज्यों में अपने कार्यकर्ताओं को सुदृढ बनाया जाये।

6.नक्सली खतरे से राजनीतिक सुरक्षा एवं विकास तथा लोक अवधारणा प्रवर्धन के मोर्चों पर एक साथ समग्र रूप से निपटना चाहिए।

7.जहाँ नक्सलवादी गतिविधियां अथवा प्रभाव की सूचना है, परन्तु नक्सलवादी हिंसा की नहीं, वहां एक पृथक दृष्टिकोण अपनाना होगा, जिसमें पिछड़े इलाकों के त्वरित सामाजिक–आर्थिक विकास तथा गैर सरकारी संगठनों, बुद्धजीवी वर्ग, नागरिक स्वतंत्रगत समूहों इत्यादी के साथ नियमित सम्पर्क बनाये रखने पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना होगा ताकि नक्सलवादी विचारधारा तथा गतिविधियों को मिलने वाले खुले समर्थन को कम किया जा सके।

8. नक्सलवादी विचारधारा तथा हिंसा की निरर्थकता एवं इससे होने वाली जीवन एवं सम्पत्ति की क्षति तथा प्रभावित क्षेत्रों में सरकार की विकास योजनाओं का प्रचार करने के लिए मीडिया का व्यापक उपयोग किया जाना चाहिए, ताकि सरकारी तंत्र में लोगों की आस्था एवं विश्वास को बहाल किया जा सके।

9.भूमि सुधारों के त्वरित कार्यान्वयन के एक भाग के रूप में भूमिहीन निर्धन लोगों को भूमि वितरित करने और सड़क, संचार, विघुत आदि जैसी भौतिक अवस्थापना का विकास सुनिश्चित करने एवं युवाओं को रोजगार के अवसर प्रदान करने पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए।

10.नक्सली भय के कारण जो ठेकेदार व कर्मी विकास कार्य करने के लिए आगे नहीं आ रहे है उनके लिए पर्याप्त सुरक्षा के उपाय किये जाने की आवश्यकता है।

11.सरकार को सुरक्षा तथा विकास दोनो मोर्चों पर प्रभावित राज्यों के प्रयासों एवं संसाधनों में सहयागे करना जारी रखना होगा तथा इस अवस्था से सफलता स्थापित करना होगा।

वास्तव में नक्सलवाद भारतीय परिवेश की उपज नहीं है। यह विदेशी धरती पर पैदा हुआ सिद्धान्त है जिसे विदेशी ऐजेन्सियां शस्त्रों के रूप में खाद पानी दे रही है। भारतीय समाज तो वास्तव में शुरू से ही समरसता का पक्षधर रहा है। भारतीय समाज में हिंसा को कभी स्वीकार नहीं किया है तथा हिंसक आन्दोलन आदि भी भारतीय समाज के लिए अग्रहणीय है। अध्ययन एवं अनुसंधान का यह विषय प्रशासनिक अधिकारियो, समाज के वरिष्ठ लोगों व राजनेताओं में नक्सलवाद के प्रति एक नये दृष्टीकोण व भूमिका के सन्दर्भ में ध्यान आकृष्ट करने पर बल देता है।

आगे की राह

एक तरफ जहाँ इस समस्या की वजह आर्थिक और सामाजिक विषमता समझी जाती रही है, वहीं दूसरी ओर इसे अब एक राजनीतिक समस्या भी समझा जाने लगा है। यही कारण है कि जानकारों की नजरों में नक्सलवाद सियासी दलों का एक 'चुनावी तवा' है जिस पर मौका मिलते ही रोटी सेंकने की कोशिश की जाती है। ऐसा इसलिये भी कहा जाता है क्योंकि, हमारी सरकारें लगातार संविधान की पाँचवीं अनुसूची को तरजीह देने से कतराती रही हैं। गौरतलब है कि इस अनुसूची में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण से जुड़े मामले आते हैं। पाँचवीं अनुसूची के तहत अनुसूचित क्षेत्रों में एडवाइजरी काउंसिल की स्थापना की बात की गई। दरअसल, इन क्षेत्रों में एडवाइजरी एक तरह की पंचायत है जो आदिवासियों को अपने क्षेत्रों में प्रशासन करने का अधिकार देती है। इस कौंसिल में अधिकतम 20 सदस्य होते हैं जिनके तीन–चौथाई सदस्य वे होते हैं जो संबंधित राज्य की विधान सभा में अनुसूचित क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

यह सार्वभौमिक सत्य है कि हिंसा से प्राप्त की हुई व्यवस्था ज्यादा दिन तक चल नहीं पाती और अंततः टूट जाती है। दूसरी ओर सरकार को भी कानून–व्यवस्था की समस्या से ऊपर उठकर इनकी मूलभूत समस्याओं को दूर करने के प्रयास करने चाहिये। हलांकि हमारी सरकार ने नक्सलवाद की

समस्या को सुलझाने के लिए रोशनी योजना, समन्वित कार्य योजनाओं की शुरूआत की है। रोशनी योजना के अंतर्गत 50000 युवकों को रोजगार प्रदान किया गया। समन्वित कार्य योजना के अंतर्गत आधारभूत संरचनाओं का विकास करना है, जिसमें मुख्यतः 83 आदिवासी और पिछड़े जिलों को सम्मिलित किया गया है। हालांकि नक्सली समस्या एवं हिंसा को रोकने के लिए विभिन्न राज्यों में विभिन्न रणनीतियों को अपनाया गया , जिसमें ग्रे हाउंड्स, एकीकृत कमान, सलवा जुडूम आदि प्रमुख है।

जब तब समाज में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य जैसे असमानताएं व्याप्त रहेगी, तब तक यह समस्यायें समाज में व्याप्त रहेगी। इस समस्या से निजाद पाने के लिए हमें इन असमानताओं के स्थापन पर समानता के दृष्टिकोण को विकसित करना होगा, साथ ही साथ उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ना होगा, तभी हम इन समस्याओं से निजाद पा सकेंगे अन्यथा नहीं।

संदर्भ सूची

1. शुक्ल,डा.कृष्णानंद, 2002,आंतरिक सुरक्षा की चुनौतियां,राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
2. सिन्हा, अजय कुमार एवं सिंह अनिल कुमार,2013, नक्सलवाद एवं भारत की आंतरिक सुरक्षा, राधा पब्लिकेशसन्स, नई दिल्ली
3. चक्रवर्ती, डी, 2010, द ड्विडेड इंडियन रेड कॉरिडोर, एवेलेबुल ऑन एचटीटीपी//पेपर्स.एसएसआरएन.कॉम/एसओ3/पेपर्स.सीएफएम?आईडी–1704105
4. गुप्ता डी के, 2008, अंडरस्टैंडिंग टेरोरिज्म एण्ड पोलिटिकल वायलेंसः द लाइफ सायकल ऑफ बर्थ,ग्रोथ,ट्रांसफॉरमेसन एण्ड डिमाइस, रूटलेज, लंदन
5. विक्टरस्कॉप जे, 2005, द माइंड ऑफ ए टेरोरिस्टःए रिव्यू एण्ड क्रिटिक ऑफ साइकोलॉजिकल एपरोचेज, द जर्नल ऑफ कन्फलिक्ट रिसोल्यूशन, 49 3–42
6. बंदुरा ए, 1977, सोशल लर्निंग थ्योरी, जेनरल लर्निंग प्रेस, न्यूयॉर्क
7. जौहरी जे.सी. 1972, नेक्सलाइड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, नई दिल्ली
8. देवी,महाश्वेता,एवं त्रिपाठी,अरुण कुमार, 2009,माओवादी या आदिवासी,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
9. सक्सेना,विवेक एवं सुशील राजेश, 2011,नक्सली आंतकवाद,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
10. तलवार,वीर भारत, 2013,नक्सलबाड़ी के दौर में,अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स(प्रा) लि, नई दिल्ली
11. कुमार,नरेन्द्र, 2015,माओ उनका समय और संघर्ष,संवाद प्रकाशन, मेरठ
12. . सिंह,प्रकाश, 2006,नक्सलिज्म इन इंडिया,रुपा.कंपनी, प्रकाशन नई दिल्ली
13. चक्रवर्ती,सुदीप, 2008,रेड सन, ट्रेवल्स इन नक्सलाईट कंट्री,पेंगुईन बुक्स इंडिया प्रा.लिमिटेड, नई दिल्ली
14. सिंह,प्रकाश, 2006, कोहिमा टू कश्मीर,रुपा.कंपनी प्रकाशन नई दिल्ली
15. नायपाल,वी.एस, 2004, माटी मेरे देश की,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

उरांव जनजाति पर खाद्य सुरक्षा अधिनियमों का प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

राजकुमार
सहायक प्राध्यापक
एस.एस.एम.एस डिग्री कॉलेज तरहसी, पलामू

सरांश

भारत में जनजातियों की परिकल्पना मुख्य रूप से वृहत्त भारतीय समाज से उनके भौगोलिक और सामाजिक अलगाव के रूप में की जाती है और इसमें उनके सामाजिक रूपान्तरण के चरण को ध्यान में नहीं रखा जाता है। यही वजह है कि सामाजिक रूपान्तरण के विभिन्न स्तरों पर समूहों और समुदायों का एक विस्तृत दायरा जनजातियों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इस तथ्य को देखते हुए कि जनजातियां वृहत्तर भारतीय समाज से पृथक रहती रही हैं। अपने परिवास के प्रदेश पर शासन में उनकी स्वयत्तता है। उनका भूमि वन और अन्य संसाधनों पर नियंत्रण है और वे स्वयं के कानूनों, परम्पराओं और रीति–रिवाजों से शासित हैं। विकास केवल सामाजिक–आर्थिक गतिशीलता का मापक नहीं है वरन् यह समुदायों के सतत् परिवर्तन की प्रक्रिया है। कुल मिलाकर विकास का अर्थ है एक निश्चित समय सीमा के अंतर्गत वांछित दिशा में परिवर्तन। इसमें मुख्यतः आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक पिछड़ापन, गरीबी, निरक्षरता एवं सामुदायिक अप्रगतिशीलता दूर की जानी है। उरांव जनजाति झारखंड की दुसरी सबसे बडी जनसंख्या वाला जनजातीय समूह है। जो राज्य के अधिकांश भागों में फैला हुआ है। सरकार के खादय सुरक्षा अधिनियमों का प्रभाव भी इस जनजातीय समूह पर व्यापक तौर पर पडा है। इस शोध पत्र के माध्यम से उरांव जनजाति पर खादय सुरक्षा अधिनियमों के प्रभावों को विस्तारित तौर पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य विंदुः जनजाति, खाद्य सुरक्षा, ऑर्गेनिक फूड, खाद्य सुरक्षा, झारखंड

झारखण्ड की जनजातियां एवं उरांव जनजातिः

2001 की जनगणना के अनुसार झारखण्ड में 32 जनजातिय समूह हैं जिसमें 9 आदिम जनजातियां हैं। संथाल उरांव, हो वैसी जनजातियां हैं जिनकी जनसंख्या ज्यादा है और वे शहरी और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में स्थायी रूप से निवास कर रहे हैं। परंतु प्रतिशत के मामले में ये काफी कम होते है।[1]

उरांव अपनी भाषा में अपने को कुडुख कहते हैं। कुडुख शब्द का संबंध संस्कृत धातु कर्ष से है जो कर्षण से होकर कुषुर, कुडुखर, कुडुख हो गया। कर्षण से कुडुखर में परिवर्तन ष से ख होना नासिकता से संबंध रखता है। ऐसा भी माना जाता है कि कुडुख नाम शायद मूल रूप से विलुप्त हुए द्राविड़ धातु से लिया गया है जिसका अर्थ मानव होता है। प्रायः सभी जनजातियों में अपने को कोई जाति न बताकर मात्र मानव कहने की परंपरा पाई जाती है। छोटानागपूर या झारखण्ड में उरांव के प्रवेश अथवा बसने के पूर्व के इतिहास का मुख्य स्रोत मिथक, परंपरा, किबंदती आदि ही है परंतु इतिहास को बूंद–बूंद चुआकर प्राप्त होने वाला ही मिथक या लोक श्रुति कहलता है।[2]

प्रजातिय दृष्टि से उरांव को प्रोटो–ऑस्ट्रोलॉयड समूह में रखा जाता है। इनका कद छोटा, कपाल दीर्घ–संकीर्ण, नाक चौड़ी, रंग गहरा सांवला से लगभग काला और बाल काला, खुरदरा, कभी लहरदार या घुंघराला होता है। सिर पर घने बाल होते हैं, किंतु शरीर पर कम, जैसे सीना, पैर में। आंखें मंझोली होती है, कभी छोटी भी और पुतलियां

काली होती है। पैर पुष्ट और सीना चौड़ा होता है। नाक जड़ के पास धंसी होती है। होठ मोटे और ठुडडी निकली होती है।

उरांव जिस क्षेत्र में निवास करते हैं, वह इलाका उबड़–खाबड़, नदी–नालों से खंडित, जंगलों से परिपूर्ण तथा उंची–नीची पहाडियों से घीरा होता है। जिसे घेरा पहाड़ कहते हैं। उरांव मिले जुले गांव में बसते हैं। निखालिस उरांव गांव कम ही मिलते हैं या नहीं मिलते। उरांव ने एकाकी पेशा खेती को अपनाया। बुनाई, लोहारगिरी, बढ़ईगिरी आदि कामों को छोटा नीचा समझते हैं इसलिए इनके लिए एक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। यही कारण है कि उरांव गांव में घासी आदि बसे मिलते हे। मुश्किल से ऐसे उरांव गांव मिलते हैं जहां अहीर और गोड़ाइत परिवार न हो। इसके अलावे अन्य जनजातियां भी जैसे उरांव, खड़िया, कोरवा, असुर आदि भी इन गांवों में मिलते हैं। इनके घर छोटे सटे और बेतरतीब ढंग से बने होते हैं। दीवार प्रायः मिटटी की होती है ओर छप्पर खपड़ैल। फूस की छावनी भी मिलती है। गांव में बहुत गंदगी फैली रहती है। अब फूस के घर भी कम ही मिलते हैं। रांची जिला के पश्चिमी और दक्षिणी भाग में जहां जंगल अधिक हैं फूस के मकान मिलते है। कभी दीवार पेड़ों की टहनी, लकड़ी बांस से बनी होती है। जिसपर मिटटी का पलास्तर चढ़ा होता है। जिसे मिटटी गोबर से लीप पोत दिया जाता है। फर्श प्रायः मिटटी की ही होती है।[3]

उरांव का मुख्य भोजन भात और साग सब्जी है। गोंदली, मडुआ, जंगली कंद मूल साग–पात, महुआ फूल अन्य फल फूल भी इनके भोजन का अंग है। चूड़ा भी खाते है। संपन्न उरांव कई किस्म की दाल और सब्जियां खाते हैं। सामान्य लोग दाल कम ही खाते हैं। माड़ में सांग सीझा कर खासकर फुटकर साग और नमक हल्दी मिला कर एक प्रकार की लपसी बनाकर खाते है। तेल का प्रयोग कम होता है। दूध दही घी दुर्लभ है। ये मांसाहारी होते हैं। अंडा मुर्गी तथा विभिन्न प्रकार के पशुओं का मांस खाते है। कभी कभार शिकार कर लेते हैं। सभी तरह की मछली पशु पक्षी खाते है। चूहा ओर कौआ बड़े चाव से खाते है। बंदर मांस कोई उरांव नहीं खाता। यह पूरे उरांव समाज के लिए निषेध है। हड़िया इनका प्रिय पेय है। जिसका उपयोग जमक र करते है। देवी देवता पर भी हड़िया का तपावन चढ़ाते हैं। सरहुल के अवसर पर घर का मालिक मालकिन उपवास करते हैं। उसी तरह शादी के समय वर वधु भी एक दिन उपवास करते हैं।

जहां तक पहनावे की बात है तो ये सफेद रंग का वस्त्र पहनते हैं।[3] अब पुरूष धोती गंजी का प्रयोग करते हैं। परंपरागत केरया अभी भी प्रचलन में हैं जो पांच गज लंबा और एक डेढ़ हाथ चौड़ा कपड़ा होता है। जिसके दोनों छोर पर रंगीन धागों से नक्काशी बनी रहती है। कमर में डंडा पहनते हैं। गरीब देहाती भगवा का प्रयोग करते है। बाहर जाते समय पिछौरी से शरीर ढक लेते है। जो ढाई गज लंबा और डेढ़ गज चौड़ा कपड़े का टुकड़ा होता है। धनी लोग प्रायः कंबल व रजाई का प्रयोग करते हैं। महिलाएं साड़ी और खनरीयां पहनती हैं। युवतियां साड़ी, साया, चोली आदि का प्रयोग करने लगी हैं। छोटे बच्चे केवल गंजी बड़े बच्चे छोटा करेया या पैंट पहनते हैं। बच्चियां पुतली पैंट व फ्राक का प्रयोग करती हैं। अब सलवार का प्रयोग बढ़ा है। पढ़ी लिखी या दफतर में काम करने वाली युवतियां बिल्कुल आधुनिक वस्त्रों का प्रयोग करती है।

<u>सामाजिक परिस्थितियां</u>– सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार परिवार है। इनमें एकाकी और संयुक्त दोनों तरह के परिवार मिलते हैं। एकल परिवार में पति पत्नी और उनकी अविवाहीत संतानें होती हैं। अधिकांशतः एकल परिवार ही पाया जाता है । संयुक्त परिवार कम ही मिलते हैं। विवाह के बाद लड़के प्रायः अपना अलग घर बसा लेते हैं।

उरांव परिवार पितृसतात्मक एवं पितृवंशीय होता है।[4] परिवार का मालिक पिता होता है। संतानों में पिता का गोत्र चलता है। संपति का उतराधिकारी पुत्र या विशेष परिस्थिति में निकट संबंध का पुरूष वर्ग ही होता है। पुत्री पिता की जमीन जायदाद में हकदार नहीं होती । पिता की मृत्यु के बाद उसकी संपति पुत्रों में बराबर बराबर बांट जाती है। स्त्रियों को अविवाहित लड़कियों को या विधवा को भरण पोषण के खर्च आदि का हक रहता है। पुरूष प्रधान समाज में उरांव स्त्रियों का स्थान सम्मानजनक है। परिवार में श्रम विभाजन पाया जाता है। हल चलाना, छप्पर छाना या अन्य

भारी भरकम काम पुरूष करते हैं। स्त्रियों को तो हल छुना तक वर्जित है। छोटे बच्चे पशु चराने बच्चों को खेलाने तथा अन्य हल्क फुल्के काम करते हैं। बड़े बुढ़े घर की रखवाली तथा कुछ सरल सहज काम करते हैं।

उरांव गांव का प्रधान या मुखिया उरांव कहलाता है। तथा धार्मिक प्रधान पुजारी या पाहन कहलाता है। उरांव पूरे गांव का प्रतिनिधित्व करता है। वह ग्रामीणों से लगान वसुलता है। पाहन गांव के कल्याण कुशलता और सुरक्षा के लिए देवी देवताओं का पूजन अर्चन करता ओर बलि चढ़ाता हैं वह गांव की सुख समृद्धि के लिए देवी देवताओं तथा प्रेतात्माओं को भी प्रसन्न रखने के लिए प्रयास करता है। ताकि उनसे गांव के लोगों का कोई अहीत नहीं हो पायें। पाहन गांव बनाता है उरांव गांव चलाता है।

आय के साधन– उरांव जनजाति की मुख्य पेशा कृषि है।[5] लगभग 53 प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर हैं। धान इनकी मुख्य फसल है। इसके अतिरिक्त मडुवा, गोंदली, गंगई जौ बाजरा आदि उपजाते हैं। तेलहन, दलहन तथा मकई एवं अब गेहूं की भी थोड़ी खेती करते हैं। दलहन में अरहर चना, उड़द आदि तथा तिलहन में सुरगुजा, सरसों,तीसी आदि उपजाते हैं। बारी बागान में सब्जी भी उपजाते हैं। इनकी खेती वर्षा पर निर्भर है जो अनिश्चित और अनियमित रहती हैं। मिटटी भी बहुत उपजाउ नहीं है। खेती के ढंग पुराने एवं परंपरागत है। सिचाई की सुविधा का अभाव है। इन सभी कारणों से अच्छी पैदावार नहीं होती है। और इनकी आर्थिक विपन्नता बनी रहती है।

शासन पद्धति– कई गांवों को मिला कर अंर्तग्रामीण पंचायत बनती है, जिसे पड़हा पंचायत कहते है। गाँव–गाँव के बीच के झगड़ों एवं विवादों का निपटारा पड़हा पंचायत करती है। इसका प्रधान मानकी कहलाता है। यह उरांव का सर्वोच्च न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका माना जाता है।[4] इसमें पड़हा राजा, दीवान, ठाकुर, कोतवार, पांडे, लाल, कर्ता आदि अधिकारी होते हें। उरांव एवं मानकी का पद वंशानुगत होता है।

उरांव समाज में चोरी, झगड़ा, मारपीट, भूमि अतिलंधन या अतिक्रमण आदि सामान्य अपराध हैं। विवाह संबंधी अपराधों में कुछ संगीन अपराध गिने जाते हैं। विवाह संबंधी अपराधों में कुछ संगीन अपराध गिने जाते हैं। इनके बीच वैवाहिक नियमों का उल्लंधन अपराध माना जाता है। गोत्रबोधी जातिबोड़ा मागो तथा गोआईबर धी पिता, पुत्री, माँ, बेटा, भाई बहन, ससुर पतोहू, भवह, भैंसूर आदि के बीच व्याभिचार गंभीर अपराध माने जाते हैं।[7] जिसके लिए समाज बहिष्कार अथवा ग्राम बहिष्कार की सजा दी जाती है। जादू टोना, डायन तथा परस्त्रीगामी के प्रति समाज का कठोर दृष्टिकोण होता है। डायन या व्याभिचारी या कुलटा की हत्या कर दी जाती है तो सारा गाँव सहयोग करता है।

गाँवों के झगड़ों का निपटारा ग्राम पंचायत करती है। इसका प्रधान उरांव होता है। वह गाँव का मालिक होता है, जिसे हातु उरांव भी कहते हैं। ग्राम पंचायत में पाहन तथा अन्य वरिष्ठ ग्रामीण भी होते हैं। इसी पंचायत के सहयोग से उरांव गाँव को संचालित या नियंत्रित करता है। ग्राम पंचायत में प्रायः बलात्कार, पर स्त्रीगमन, विवाह पूर्व यौन संबंध, विवाहोतर यौन संबंध, तलाक, उतराधिकार, अंतरजातीय विवाह, संपति का बंटवारा आदि से संबंधित मामलों का निपटारा होता है। पंचायत का निर्णय सभी को मान्य होता है। और उसका अनुपालन भी होता है। लेकिन वर्तमान समय में सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए न्यायालय का सहारा लेने लगे हैं।

खादय सुरक्षा अधिनियम

भारत सरकार ने संवैधानिक दायित्व और वैश्विक संधियों की प्रतिबद्धता निभाते हुए 10 सितम्बर, 2013 को 'राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013' लागू किया। इस अधिनियम के तहत देश की दो तिहाई आबादी को लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टीपीडीएस के माध्यम से सस्ती दर पर अनाज पाने का कानूनी हक प्राप्त है। अगर किसी व्यक्ति को निर्धारित अवधि में राशन की दुकान से अनाज नहीं मिलता है तो वह व्यक्ति 'खाद्य सुरक्षा भत्ता' का दावा करने का हकदार है। इस कानून में गर्भवती महिलाओं, स्तनपान कराने वाली माताओं और 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को निर्धारित पोषण मानकों के अनुरूप निःशुल्क भोजन के रूप में पौषणिक सहायता मुहैया कराने का भी प्रावधान है। खाद्य सुरक्षा को अग्रसर करने के लिये छोटे और मझोले किसानों की आजीविका सुनिश्चित करने के जरूरी उपायों का खाका भी इसमें उल्लिखित है।[5]

खाद्य सुरक्षा अधिनियम के तहत टीपीडीएस के माध्यम से हर साल लगभग 550 लाख टन खाद्यान्न सस्ती दर पर मुहैया कराने का लक्ष्य है। आम बजट 2016–17 में सरकार ने इसके लिये 1,34,834 करोड़ रुपये बजटीय आवंटन किया है। बजटीय आवंटन की दृष्टि से आज यह भारत सरकार का सबसे बड़ा कार्यक्रम है।[6]

भारत में खाद्य सुरक्षा की वर्तमान स्थिति

भारत में खाद्य सुरक्षा की स्थिति का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इंटरनेशनल फुड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट के वार्षिक 'ग्लोबल हंगर इंडेक्स–2016' पर 118 देशों में भारत का स्थान 97वां है। भारत इस सूचकांक पर अपने पड़ोसी देशों– बांग्लादेश, नेपाल और चीन से भी पीछे है। इससे पता चलता है कि भुखमरी की समस्या भारत में कितनी गम्भीर है। वहीं एफएओ की रिपोर्ट 'द स्टेट ऑफ फूड इंसिक्यूरिटी इन द वर्ल्ड 2015' बताती है कि हाल के वर्षों में दुनियाभर में कई देशों ने भूख की समस्या खत्म करने की दिशा में प्रगति की है लेकिन भारत जैसे देशों में इसकी रफ्तार कम है। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में अब भी करोड़ों लोग कुपोषण के शिकार हैं।[7]

खादय सुरक्षा अधिनियम का झारखंड पर प्रभाव

पिछले दो वर्षों में राज्य में भूख से कम–से–कम 19 लोगों की मौत हुई हैं. इनमें से नौ लोग आधार–संबंधित कारणों से अपने राशन से वंचित थें।

झारखंड सरकार ने मार्च 2017 में भी एक फरमान जारी किया था जिससे बड़े पैमाने पर राशन कार्ड रद्द किए गए थे. राशन कार्ड के साथ आधार को जोड़ने के लक्ष्य को पूरा करने के लिए स्थानीय कर्मचारियों ने वैसे कार्डों को भी रद्द कर दिया था जिनमें परिवार के एक भी सदस्य का आधार जन वितरण प्रणाली से नहीं जुड़ा थों।

इन परिवारों में से एक सिमडेगा की 11 वर्षीय संतोषी कुमारी का परिवार भी था. घर में भोजन के अभाव में सितंबर 2017 में संतोषी भूख की शिकार हो गई थी. उसी वर्ष, झारखंड की रघुबर दास सरकार ने 11.64 लाख डुप्लीकेट और फर्जी राशन कार्ड रद्द करने का दावा किया था ।

उसके बाद सरकार ने कई बार यह आंकड़ा बदला है. लेकिन आज तक सरकार ने न तो रद्द किए गए कार्डों की सूची सार्वजनिक की है और न ही वह किसी प्रकार का प्रमाण दे पाई है कि रद्द किए गए कार्ड सही में डुप्लीकेट या फर्जी थे.[8] ।

प्रभावी शिकायत निवारण प्रणाली की कमी

प्रभावी शिकायत निवारण प्रणाली न होने के कारण ये समस्याएं और बढ़ जाती हैं. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के अनुसार झारखंड सरकार ने जिला शिकायत निवारण पदाधिकारी मनोनीत किए हैं. लेकिन कार्डधारियों के लिए शिकायत करने के लिए गांवों से जिले तक आना आसान नहीं होता. शिकायत प्रखंड विकास पदाधिकार के माध्यम से भेजने पर भी अधिकतर समय उनका सही रूप से निवारण नहीं होता ।

हाल ही में दुमका के 45–वर्षीय कलेश्वर सोरेन की भूख से मौत होने की घटना से शिकायत निवारण प्रणाली की निष्क्रियता का अंदाजा लगाया जा सकता है. आधार से न जुड़े होने के कारण उनके परिवार का राशन कार्ड 2016 में रद्द कर दिया गया था. उनके गांव के 27 अन्य परिवारों का राशन कार्ड भी इसी कारण से रद्द कर दिया गया था ।

एक साल तक विभिन्न स्तरों पर शिकायत और विरोध–प्रदर्शन करने के बाद 26 परिवारों को नया कार्ड निर्गत किया गया. लेकिन इतने हल्ला–हंगामा के बाद भी कलेश्वर सहित दो परिवारों को राशन कार्ड निर्गत नहीं हुआ (16 नवंबर 2018 तक, जब उनकी मौत की जांच–पड़ताल के लिए भोजन का अधिकार अभियान का एक दल उनके गांव गया था) ।

विभागीय पदाधिकारियों का कहना है कि जन वितरण प्रणाली के वर्तमान इलेक्ट्रॉनिक मैनेजमेंट इनफॉरमेशन सिस्टम में रद्द किए गए कार्डों को पुनः निर्गत नहीं किया जा सकता है. जिन परिवारों का राशन कार्ड रद्द होता है उन्हें फिर से

नए कार्ड के लिए आवेदन देना पड़ता है. उनका भोजन का अधिकार फिर से मिले, इसकी जिम्मेदारी भी उन पर ही होती है, न कि सरकार पर ।

आधार के कारण राशन से वंचित होने की खबरों के बाद केंद्र सरकार ने अक्टूबर 2017 में राज्यों को जन वितरण प्रणाली में अपवाद व्यवस्था लागू करने का आदेश दिया, जिससे वैसे कार्डधारी जिनका राशन कार्ड आधार से जुड़ा न हो या जो बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण नहीं कर पाए, उन्हें भी अनाज दिया जा सके.

इसके लिए झारखंड सरकार ने राशन डीलरों को अपवाद पंजी बनाने का निर्देश दिया, जिसमें वैसे परिवारों को दिए गए अनाज का ब्योरा दर्ज किया जाना था. लेकिन अधिकांश राशन डीलरों ने यह व्यवस्था शुरू ही नहीं की ।

राजनीतिक प्रतिबद्धता की कमी

इसमें शायद ही कोई शक है कि झारखंड सरकार के हाल के निर्णय के बाद आधार से लिंक न होने के कारण अनेक लोगों का नाम उनके राशन कार्ड से काट दिया जा सकता है. इसके कारण उन परिवारों को मिलने वाली अनाज की मात्रा कम हो जाएगी । हालांकि, इस निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय का समर्थन प्राप्त है. आधार–संबंधी कारणों से सामाजिक–आर्थिक अधिकारों के हनन के प्रमाणों को अनदेखा करते हुए न्यायालय ने आधार अधिनियम के अनुच्छेद 7 को मान्य माना, जिसके अनुसार सरकारी सब्सिडी लेने के लिए आधार अनिवार्य है ।

उरांव जनजाति पर खाद्य सुरक्षा का प्रभाव

वर्तमान काल में जनजातीय समाज के पास इस बात का कोई समर्थन नहीं है कि वे किस प्रकार से आत्मनिर्भर बने रह सकते है। स्थानीय जीवन पद्धति व समन्वित विकास की उनकी अवधारणा अब पुराने दिनों की बात हो गई है। उनको अब अपनी छोटी सी आवश्यक्ता की पुर्ति हेतु भी समझौता करना पड़ रहा है। जिसका मुख्य कारण औद्योगिक विकास व सीमित समय की मुद्रा प्रणाली है।

आदिवासी क्षेत्रों से खनन व अन्य औद्योगिक प्रक्रियाओं से प्राप्त लाभ का एक निश्चित लाभांश इनको आवश्यक रूप से दिया जाना चाहिए। यह न सिर्फ उनको मुआवजा के रूप में मिले बल्कि उनके क्षेत्र में लगने वाले नये उद्योगों से उनके जीवन में होने वाले नुकसान के रूप में भी दिया जाना चाहिए। इसके अलावा किसी भी औद्योगिक परिसर या उत्पादन इकाई का उनको शेयर भी मिलना चाहिए क्योंकि उनके क्षेत्र की किसी भी स्रोत पर उनका पहला अधिकार है। देश की स्वतंत्रता के 65 वर्षों के अंतराल के बावजूद भी आज तक न तो लोगों का कोई आंदोलन चला न ही किसी गैर सरकारी संगठन के माध्यम से स्थानीय आदिवासियों के संरक्षण की कोई बात ही की गई।[9]

जनजातिय क्षेत्रों में राशन दुकान की प्रणाली बिल्कुल ही ठप्प पड़ गई। यह ठिक उसी प्रकार से दिखाई पड़ता है जिसमें इसके होने या न होने से कोई फर्क नही पड़े। लगभग 90 प्रतिशत आदिवासी अति भूख और बढ़ती गरीबी से जूझ रहे हैं और इनके लिए बनाई राशन दुकान प्रणाली बिल्कुल ही एक मजाक की तरह लगता है। सभी आदिवासी घरों में गरीबी रेखा के कार्ड दिये गये है। परंतु अपनी उपयोगिता न होने के कारण वह भी अनुपयोगि ही दिखाई पड़ता है।

आदिवासी क्षेत्रों में भूख की समस्या की गहराई व इसके विविध कारकों को भारत में कम ही समझा जाता है और इसे अधिकांश तौर पर नासमझ रूप से ही प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी के इस समस्या पर बहुत ही कम गुणवता पूर्ण शोध कार्य संपादित हुए हैं और बहुत से वैसे साहित्य जो उपलब्ध भी हैं वे अपने अस्तित्व को खोते हुए ही नजर आते हे। क्यों कि वर्तमान समय में वे अपनी प्रासंगिकता खो चुके हैं या खो रहे हैं। जो आदिवासियों के जीवन पर खाद्य सुरक्षा से संबंधित प्रकाश डाल सकें। पिछले 65 वर्षों के स्वतंत्रता के काल में जनजातियों में पलायन की दर में तीव्र से तीव्रतर बढ़ोतरी हुई है। उनकी जमीनें छिन ली गई , वनों पर उनका पारंपरिक तौर दिया गया अधिकार हटा दिया गया तथा वर्तमान समय में होने वाले औद्योगिक विकास के संदर्भ में गांव के आदिवासीयों से राय लेना भी मुनासिब नहीं समझा जा रहा है। वर्तमान में आदिवासी क्षेत्र बिल्कुल ही अविकसित व अति पिछड़े माने जाते

है। जो विकास के फलों से अलग हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत लचीली करण की नीति अपनाई गई है। जिसमें सम्पूर्ण बाजार को नियंत्रण से मुक्त रखा गया, जिससे वे भूख से परेशान होते रहे और उनके क्षेत्रों में अपनाई जाने वाली पीडीएस प्रणाली पूर्णतया ठप हो चुकी है।[10] जनजातियों का पूर्ण अमानवीयकरण किया गया और वे अपने पारंपरिक स्थानों से हटाये जाने लगे। जनजातियों का एक बड़ा भाग अपनी वर्तमान स्थिति से संतुलन बनाने का प्रयास कर रहा है। और वह अब या तो भूमिहीन मजदूर के रूप में या कम श्रम पर कार्य करने वाले मजदूर के रूप में अपने जीवन का निर्वहन कर पा रहा है। जो खदानों पौधरोपण व इंट भटटों पर कार्य करते है। डिक्लरेशन एडोप्टेड एट द ऑल इंडिया ट्राइबल कन्वेंशन हेल्ड इन रांची ऑन नवंबर 18–19, 2002।

वर्तमान में भारत के जनजातीय समाज आर्थिक रूप से पिछड़े और सामाजिक रूप से दबे कुचले परिस्थितियों में अपना जीवन निर्वाह करने के लिए विवश हैं। मानव विकास के अंतिम पायदान पर अगर कोई समूह है तो वह है जनजातियों का समूह। वे भू माफिया भुमि के मालिकों ठिकेदार भ्रष्ट पुलिस पदाधिकारी और शासन करने वाले राजनीतिज्ञों के नीतियों का शिकार हो रहे हैं। आदिवासीयों की एक बडी संख्या अपनी परिवार सहित दुसरे क्षेत्रों की ओर प्रवास कर रही है। जिससे वे अपने जीवन निर्वहन के लिए दो वक्त की रोटी का इंतजाम कर सकें।

जहां तक वर्तमान परिदृश्य में ग्रामीण विकास से तात्पर्य है तो इसका अर्थ यह है कि ग्रामीण क्षेत्र की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति मे संरचनात्मक परिवर्तन से लगाया जाता है जो ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले निम्न आय वर्ग के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए किये जाते हैं। इससे एक ओर तो देश के आर्थिक विकास में अवरोध उत्पन्न करने वाले तत्वों जैसे अत्यधिक गरीबी, अत्याचार, अत्यंत निम्न उत्पादकता एवं ग्रामीण समाज का शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति दिलाता है। तो दुसरी तरफ उनके विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने एवं स्वतः संपोषणीय बनाने के लिए उन्हें बुनियादी सेवाएं प्रदान की जाती हैं तथा आधारभुत ढांचे को सुधारा जाता है। जैसे सिंचाई हेतु प्र्याप्त मात्रा में विद्युत आपूर्ति उचित दामों पर उर्वरकों ओर कीटनाशकों को उपलब्ध कराना, यातायात एवं भण्डारण सुविधाओं का विकास करना, सरकारी खरीद मूल्य कृषकों के अनुकूल होना, कृषि ऋण कृषि बीमा, और अनुदानों को आसानी से सुलभ कराना ओर इसके साथ यह भी आवश्यक है कि कृषि अनुपूरक व्यवसायों जैसे पशुपालन, मत्स्य पालन का विकास हो। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में यह रोजगार प्रदान करने वाला सबसे बड़ा क्षेत्र है। परंतु पिछले एक दशक से देखा जाये तो कृषि में सार्वजनीक निवेश कम हो जाने से कृषि जनित अर्थव्यवस्था धीमी पड़ गई। नवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि की विकास दर 2.2 प्रतिशत वार्षिक थी जो कि बढ़कर दसवीं पंचवर्षीय योजना में 2.3 प्रतिशत वार्षिक थी। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि पिछले दशक में कृषि की विकास दर मात्र 0.1 प्रतिशत रही। हालांकि सेवा क्षेत्र और उद्योग क्षेत्र में तो कुछ विकास होता रहा जिसके परिणामस्वरूप भारत का सकल घरेलू उत्पाद पिछले दशक में ओसत रूप से 8.6 प्रतिशत ही अच्छी रही। किंतु इसमें कृषि क्षेत्र का योगदान 2.73 प्रतिशत पर ही रूका रहा।[11] देश के सकल घरेलु उत्पाद में सेवा क्षेत्र ने सबसे अधिक लगभग 50 प्रतिशत के आसपास योगदान प्रदान किया है। ओर कृषि क्षेत्र ने मात्र 22 प्रतिशत का योगदान दिया है। इससे भारत तीव्र विकास करने वाले विकासशील देशों की श्रेणी में शामिल तो हो गया किंतु देश असंतुलित विकास मार्ग पर ही बढ़ता रहा। जिसके परिणामस्वरूप महंगाई बढ़ती गई ओर देश में मुद्रा स्फीति ने आपूर्ति पक्ष को कमजोर कर दिया। इसके साथ ही इस असंतुलित विकास से देश में आय की असमानताएं भी बढ़ी है। सेवा क्षेत्र और उद्योग क्षेत्र में तो लाभ एवं वृद्धिया हो रही हैं किंतु देश के एक अरब से ज्यादा लोगों के पेट को भरनेवाला कृषक अब बदहाल की स्थिति में पहुंच गया है। जिनमें लघु एवं सीमांत कृषकों की स्थिति तो अत्यंत दयनीय एवं चिंताजनक हो गयी है।

बाजार की विसंगतियां भी भारतीय कृषि की समस्याओं के लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार हैं। इनमें मुख्यतः भूमि के लिए व्यापक आधार वाली पटटे बाजार की अनुपस्थिति जिसके कारण खराब भूमि के इस्तेमाल के लिए भी विशाल निवेश की आवश्यक्ता पड़ती है। ऐसी उचित श्रम नीति का अभाव जोकि अकुशल श्रम की बढ़ती मांग को पूरा कर सके तथा प्रशिक्षण द्वारा अकुशल श्रम को अनुशासनबद्व कुशल तथा अर्ध कुशल श्रम मं बदल सकें। ओर कृषि

अनुसंधान व विस्तार की जवाबदेह तथा पारदर्शी प्रणाली की कमी जो कि किसानों और कृषि प्रसंस्करण उद्यमों दोनों की जरूरतों के प्रति संवेदनशील हो । इसी प्रकार की समस्याएं उच्च उपज वाली नस्लों और प्रमाणित बीजों के उपयोग में कम प्रगति खाद के इस्तेमाल में असंतुलन कुछ खास पगकार की खादों के ज्यादा इस्तेमाल और कुछ के आयात में बहुत उतार चढ़ाव औरमृदा संरक्षण के लिए कम उपाय के रूप में उभर कर आती है। 1991 में देश में आर्थिक उदारीकरण के साथ ही भारत डब्ल्यूटीओ के संस्थापक सदस्य के रूप में शामिल हुआ और प्रगति के लिए देश ने आयात निर्यात को प्राथमिक क्षेत्र का दर्जा दिया। लेकिन वृद्धि की उच्च आशओं बावजूद भारत से कृषि निर्या वास्तव में बहुत सामान्य नतीजे ही दर्शाती है।[12] बानिक के हाल के एक लेख में इसी प्रकार का निराशा भरा चित्र मिलता है। जिसमें भारत से प्रमुख कृषि व्यापार निर्यात में गिरती वृद्धि दर दिखाई गई है। लगता है कि इसकी मुख्य समस्याएं दो ही हैं– पहली प्रतिस्पर्धात्मक शक्तियों के कारण और ज्यादातर विकसित देशों द्वारा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि में अधिक सब्सिडी जारी रखने के कारण अंतर्राष्ट्रीय दामों में आई कमी, और दूसरी गुणवता बाधा की जिसे एक प्रकार की गैर कर बाधा कहा जाता है। जिसके इस्तेमाल विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के निर्यात अपने देश में न घुसने देने के लिए किया जाता है।

भारत सरकार के 2005–06 के आर्थिक सर्वेक्षण में कृषि क्षेत्र के निर्यात में पेश आने वाली कठिनाइयों का जिक्र किया है। उसके अनुसार घरेलू उत्पादन, भंडारण खाद्य सुरक्षा, मूल्य निर्धारण के बारे में परस्पर विरोधी घरेलू नीतियों के अलावा निर्यात की न्यूनतम मात्रा तय न कर पाने के कारण भारत विश्वसनीय आपूर्तिकर्ता नहीं बन पाया। अंतर्राष्ट्रीय भाव के मुकाबले चावल, चीनी, गेहूं आदि जिंसों का घरेलू भाव अधिक होने के कारण उनकी पैठ विदेशी बाजारों में नहीं हो पाती। कई बार उसे अपना माल घाटे में बेचना पड़ता है।[13] अलबता बासमति चावल का निर्यात फायदेमंद है, मगर इस क्षेत्र में पाकिस्तान एक बड़ा प्रतिस्पर्धा प्रस्तुत कर रहा है।

खेती भारत का बुनियादी पारंपरिक उद्योग है जिसकी संभावनाओं क्षमताओं का पूरा उपयोग नहीं हो पाया है। केवल निर्यात बढ़ाने और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में आगे निकलने के लिए ही नहीं, किसानों की आमदनी बढ़ाने, अधिसंख्य गरीब जनता को कम दाम में अनाज और खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराने के उददेश्य से भी उत्पादकता बढ़ाने तथा लागत घटनाने के लिए हर संभव प्रयास किये जाने चाहिए। पिछले दो वर्षों में सर्वजनिक वितरण प्रणाली से अनाज की निकासी घटी है क्योंकि खाद्य निगम का अर्थिक मूल्य अधिक है। उसके गोदाम में अनाज के अंबार लगे हैं। इस व्यवस्था में बदलाव अपेक्षित हैं और खेती के तौर तरीकों में भी। दो उदाहरण ऐसे हैं जिनसे व्यापक और आमूल सुधार के संभावित परिणमों का अनुमान लगाया जा सकता है। 2005–06 के निर्यात आंकड़ों के अनुसार फलों के निर्यात में 52 प्रतिशत, सब्जियों में 30 प्रतिशत, संसाधित खाद्य पदार्थों में 60 प्रतिशत, पेय पदार्थों में 132 प्रतिशत तथा तील व नाइजर में 52 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। ये प्रतिशत उत्साहवर्द्धक हैं हालांकि उनकी मात्रा अधिक नहीं है। यह छोटे पैमाने पर निर्यात के लिए आधुनिक विधि से फल और सब्जियों को उगाने का नतीजा है। आंध्र प्रदेश के सूखाग्रस्त कुप्पम क्षेत्र के दो गांवों में इस्राइली तकनीक से सफेद प्याज, लाल गोभी, ब्रोकोली, घेरकीन और बेबीकॉर्न निर्यात के लिए उगाये जा रहे हैं। ड्रिप इरिगेशन और ग्रीन हाउस पद्धतियों का इस्तेमाल किया जाता है। इससे न केवल निर्यात बढ़ा है वरन् इन गांवों से गरीबी भाग गई। इसी प्रकार पूसा में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में उतम किस्म के टमाटर, खीरा, बैंगन, संतरे,स्ट्राबेरी, चेरी आदि उगाए जा रहे हैं। पांच सितार होटलों में भी इनकी अच्छी खपत है। संस्थान के वैज्ञानिकों ने भारत में विदेशी सब्जियां उगाने की तकनीक पक्की कर ली है। इसे जागरूक और समर्थ किसान ही अपना सकते हैं।

ऑर्गेनिक फूड की मांग विदेशों में तेजी से बढ़ रही है। अनुमान हे कि वर्ष 2005 में 30 अरब डालर के ऐसे खाद्य पदार्थ बिके। इनकी खपत अमेरिका, यूरोपियन यूनीयन और जापान में अधिक है। इन देशों में पशुओं की बीमारी, पशु चारे में डायोक्सिन की मौजूदगी और जीन संशोधित उत्पादनों के हानिकारक प्रभावों से बचने के लिए गैर रासायनिक कृषि उत्पादों की मांग बढ़ती जा रही है। अनुमान है कि प्रकृतिक भोज्य पदार्थों की मांग हर साल 15–20 प्रतिशत के

हिसाब से बढ़ती जाएगी। भारत में इस नई प्रवृति का व्यावसायिक लाभ उठाने का प्रयास नहीं किया गया है।[14] बहुत से साधारण और गरीब किसान रासायनिक खाद और कीटनाशकों का उपयोग नहीं करते हैं। कौन से खाद्य पदार्थ रासायनिक पदार्थों की सहायता से नहीं उगाए गए हैं। इसे प्रमाणित करने की कोई सरल व्यवस्था नहीं है। पिछले वर्ष केवल निर्यातकों के लिए प्रमाणीकरण के नियम बनाए गए। काफी, चाय,मसालों की उत्पादक अथवा निर्यातक कंपनियों नें प्राकृतिक खेती आरंभ कर दी है। कुछ अन्य कंपनियों ने भी इस कारोबार में हाथ डाला है। प्राकृतिक खेती को अन्यथा भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि रासायनिक खेती से होन वाली हानियों से बचा जा सकता है।

निष्कर्ष

कल्याणकारी राज्य एवं सरकारें, अनेकों विधानों तथा श्रम हितकारी व कल्याणकारी तथा सुविधाकारी योजनाओं एवं घोषणाओं के बावजूद भी इन जनजातियों की स्थिति एवं कार्यस्थल की परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं आया है। यह बात मानवाधिकार युग एवं सामाजिक न्याय वाले राष्ट्र एवं राज्य के लिए एक अमानवीय कृत्य सिद्ध हो रहा है। आवश्यकता उद्योगों को वैधानिक नियमों में बांधने और एक सुधारात्मक पहल की है। संभव है साक्षरता के व्यापक प्रचार–प्रसार एवं निर्धनता उन्मूलन के प्रयासों के बाद इन की परिस्थितियों में अपेक्षित सुधार किया जा सके।

बहरहाल आजादी के सात दशक बाद आखिरकार देश की जनता को कानूनी रूप से खाद्य सुरक्षा का अधिकार प्राप्त तो हो गया है लेकिन इसे जमीनी–स्तर पर मूर्त रूप देने में कई चुनौतियाँ भी आ रही हैं। इस कानून का क्रियान्वयन सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तंत्र के माध्यम से हो रहा है। समय–समय पर कई अध्ययनों में यह बात सामने आई है कि पीडीएस में 40 प्रतिशत तक लीकेज है। इसका मतलब यह है कि सरकार जो अनाज गरीबों के लिये सस्ती दर पर उपलब्ध कराती है, उसका बड़ा हिस्सा भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाता है। ऐसे में इस कानून के क्रियान्वयन में पारदर्शिता और निगरानी का ठोस प्रबंध करने की जरूरत है। अब तक राज्यों ने ऐसा कोई प्लेटफॉर्म तैयार नहीं किया है जिस पर कोई भी नागरिक आसानी से यह जानकारी प्राप्त कर सके कि कितने लोग सस्ती दर पर अनाज पाने से वंचित रहे और कितने लोगों ने खाद्य सुरक्षा भत्तों का दावा किया है। साथ ही पीडीएस को प्रभावशाली बनाने के लिये अनाज की सार्वजनिक खरीद, भण्डारण और परिवहन की व्यवस्था को भी उन्नत बनाने की जरूरत है। हाल के वर्षों में पीडीएस के तहत वितरित किये जाने वाले अनाज की आर्थिक लागत जिस कदर तेजी से बढ़ी है, उसे देखते हुए इस पूरे तंत्र को और अधिक सक्षम बनाने की जरूरत है ताकि इस कार्यक्रम के चलते सरकार को राजकोष पर अधिक बोझ न पड़े।

संदर्भ सूची

1. भारत की जनगणना 2011
2- विद्यार्थी, एल. पी. एण्ड बी. के. राय 1985, ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया, कंसेप्ट नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 43
3- पी.सी ओरांव, 2004, लैंड एण्ड पिपुल ऑफ झारखण्ड, टीआरआई पब्लिकेसन पृष्ठ संख्या 65
4- रावेंस्टिन, अर्नेस्ट जी 1987 द लॉ ऑफ ट्राइबल डेवलपमेंट जर्नल ऑफ द रॉयल स्टैस्टिकल सोशायटी 52: पृष्ठ संख्या 241–301
5. देव, एस. महेंद्र, कानन, वेफ.पी. और रामचंद्रन, नीरा ; 2003, 'टुआर्डस ए पफू ड सिक्योर इंडियाः इश्यूश एंड पॉलिसीश, इंस्टीच्यूट पफॉर ह्यूमन डेवलपेमेंट, नयी दिल्ली पृष्ठ संख्या 34
6. एपफ.ए.ओ. 1996, वर्ल्ड पूफड सम्मिट 1995, पूफड एण्ड एग्रीकल्चरल ऑर्गनाइजेशन, रोम पृष्ठ संख्या 90
7. आर्थिक सर्वेक्षण 2002–03, 2003–04, 2004–05, वित्त मंत्राालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली। पृष्ठ संख्या 56
8. आई.आई.पी.एस. 2000, नेशनल हेल्थ एंड पैफमली सर्वे–2, इंटरनेशलन इंस्टीच्यूट ऑपफ पॉपुलेशन साइंसेश, मुंबई। पृष्ठ संख्या 898

9. सागर, विद्या, 2004,फूड सिक्युरिटी इन इंडिया, पेपर प्रजेंटेड इन ए.डी.आर.एपफ.–आई.एपफ. आर.आई. फाइनल मीटिंग ऑन फूड सिक्युरिटी इन इंडिया, सितंबर 10–11, नयी दिल्ली। पृष्ठ संख्या 112
10. सक्सेना, एन.सी., 2004, सेनेरजाइशिंग गर्वमेंट एपफर्ट फॉर फूड सिक्युरिटी, स्वामीनाथन, एम. एस. और मेडरानो, पैड्रो, ; में, टुवार्डस हंगर प्रफी इंडिया, ईस्ट–वेस्ट बुक्स, चेन्नई। पृष्ठ संख्या 119
11. सक्सेना, एन.सी., 2004, रिऑर्गनाइशग पॉलिसीश एंड डेलेवरी पफॉर एलीवियेटग हंगर एंड मालन्यूट्रिशन, नेशनल फूड सिक्युरिटी सम्मिट, नयी दिल्ली में प्रस्तुत पर्चा। पृष्ठ संख्या 23
12. सेन, ए.वेफ., 1983, पॉवर्टी एंड पैफमस : एन ऐसे ऑन इनटाईटलमेंट एंड डेप्रिवेशन, ऑक्सपफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पृष्ठ संख्या 378
13. शर्मा, रेखा और मीनाक्षी, जे.वी., 2004, माइक्रोन्यूट्रियेंट डिपिफसिएन्सीश इन रूरल डाइट्स, टुवार्डस हंगर प्रफी इंडियाः प्रफॉम विजन टू एक्शन, प्रोसीडग्स ऑफ वंफसलटेशन ऑन 'टुवार्डस हंगर फ्री इंडिया : काउंट डाउन प्रफॉम 2007' नयी दिल्ली। पृष्ठ संख्या 178
14. सैनी श्वेता एण्ड मार्या कोशिका ;2014द्ध इवोल्यूशन एण्ड क्रिटीक ऑपफ बफर स्टॉकग पोलिसी ऑपफ इण्डिया वर्किग पेपर न. 283, इण्डियन कौंसिल पफार रिसर्च ऑन इन्टरनेशनल इकोनोमिक रिलेशन्स। पृष्ठ संख्या 20

भारतीय समाज पर नगरीकरण का प्रभाव : एक विमर्श

डॉ. जयप्रकाश यादव,
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी,
Email ID- apkajay@gmail.com
Mo-7376561562

नगरीकरण एक गतिशील प्रक्रिया है, यह प्रत्येक नगर, महानगर, देश तथा समाज में अलग–अलग ढंग से चलती है क्योंकि प्रत्येक नगर की स्थिति एवं प्रकृति समान नहीं होती। इसका प्रभाव समाज के सभी पक्षों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। भारतीय सन्दर्भ में नगरीकरण के प्रभावों की व्यापक विवेचना इसके सामाजिक पक्षों के सन्दर्भ में करना नितान्त आवश्यक है। देखने पर पता चलता है कि नगरीकरण के कारण हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों में व्यापक परिवर्तन हो रहा है। लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठ रहा है, रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों में कमी आयी है, स्त्रियों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों को पहले की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त हुए हैं, वैयक्तिक स्वतन्त्रता में वृद्धि के साथ ही पारिवारिक नियन्त्रण में भी कमी आयी है। राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि हुई है तथा जातिगत भेदभाव कम हुआ है इसके साथ ही साथ नगरीकरण ने व्यक्तिवाद तथा लाभ की भावना में वृद्धि कर अनावश्यक प्रतियोगिता को भी पोषित किया है, मलिन बस्तियों में वृद्धि, भौतिकतावादी जीवन के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर औपचारिक सम्बन्धों को जन्म देकर अनेक जटिल समस्याओं को भी लाकर खड़ा कर दिया है।

परम्परागत रूप से देखा जाय तो भारतीय समाज में **संयुक्त परिवार** को आदर्श माना गया है, जिसमें दो या तीन पीढ़ीयों के सदस्य साथ–साथ रहते हैं। परन्तु तीव्र औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने रोजगार के अनेक विकल्प प्रस्तुत कर दिये हैं परिणामस्वरूप व्यक्ति रोजगार पाने के लिए गाँवों को छोड़कर शहरों की ओर आ रहे हैं जहाँ रहने की पर्याप्त जगह नही है जिस कारण व्यक्ति केवल अपनी पत्नी एवं अविवाहित बच्चों के साथ ही शहरों में रहता है तथा अपने माता–पिता और परिवार के अन्य सदस्यों से दूरी बना लेता है जिस कारण संयुक्त परिवार की जगह एकाकी परिवार में वृद्धि हो रही है तथा व्यक्ति में स्वतन्त्रता एवं स्वच्छन्दता की भावना का विकास हो जाता है क्योंकि उसके ऊपर से संयुक्त परिवार का नियन्त्रण समाप्त हो जाता है। बड़े महानगरों में तो स्थिति और भी भयावह है जहाँ पति और पत्नी दोनों नौकरी में हैं यदि दोनों की नौकरी और समय अलग–अलग है तो दोनों में तनाव और वैचारिक मतभेद भी उत्पन्न होते रहते हैं यहीं नहीं कभी–कभी तो उनका अहम इतना ज्यादा टकरा जाता है कि आत्महत्या, हत्या और तलाक जैसी घटनायें भी घट जाती हैं। समयाभाव के कारण बच्चों की परवरिश को लेकर भी वे चिन्ताग्रस्त रहते हैं, परिणामस्वरूप कुछ दम्पत्ति सिर्फ एक बच्चें को जन्म देकर ही संतुष्ट हो जाते हैं जिसका परिणाम यह होगा कि हमारे समाज से भविष्य में कुछ रिश्ते ही समाप्त हो सकते हैं, जैसे– चाचा–चाची, मामा–मामी, बुआ–फूफा, भैया–भाभी, दीदी–जीजा आदि और तब एकल कामकाजी परिवारों में अंकल–आण्टी जैसे औपचारिक रिश्तों से ही काम चलाना पड़ेगा। यही नहीं जो काम पहले संयुक्त परिवार के सदस्यों तथा रिश्तेदारों के माध्यम से होता था उन्हें अब विभिन्न समितियों

और व्यावसायिक एजेन्सियों के माध्यम से कराया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नगर की औपचारिक संस्कृति हमारे पारिवारिक सम्बन्धों को भी औपचारिक बना दिया है।

परम्परागत रूप से जाति संरचना ऊँच–नीच के संस्तरण, अन्तर्विवाह, खान–पान में प्रतिबन्ध एवं व्यावसायिक विभाजन पर आधारित थी परन्तु नगरीकरण के प्रभाव से **जाति–व्यवस्था में पर्याप्त परिवर्तन** देखने को मिल रहे हैं। नगरों में व्यक्ति की पहचान उसकी जाति से नहीं बल्कि उसकी व्यक्तिगत उपलब्धियों से होती है तथा उसी से उसके प्रस्थिति का निर्धारण होता है। नगरीय क्षेत्रों में रोजगार एवं व्यापार के अनेक अवसर उपलब्ध रहते हैं जहाँ देश के विभिन्न जातियों एवं समुदायों से सम्बन्धित होते हैं जिस कारण उनके बीच जाति से सम्बन्धित ऊँच–नीच की भावनाएं कम हो रही हैं। जब अनेक जातियों के लोग साथ–साथ काम करते हैं साथ–साथ घूमना–टहलना, खाना–पीना, उठना–बैठना, एक मुहल्ले एवं कालोनियों में साथ–साथ रहनें तथा एक दूसरे के सुख–दुःख में भागीदार हो रहे हैं जिसके कारण अस्पृश्यता सम्बन्धी विचारों में भी परिवर्तन आ रहा है। नगरों की व्यावसायिक गतिशीलता बिना किसी भेदभाव के सभी व्यक्तियों को समान आर्थिक अवसर उपलब्ध करा रही है परिणामस्वरूप जाति–व्यवस्था से सम्बन्धित कट्टर रूढ़िवादिता कमजोर हो रही है। परम्परागत रूप से व्यवसाय का निर्धारण जाति पर आधारित होता था यानी जो जिस जाति में जन्म लिया उसे उसी ही जाति का पेशा अपनाना पड़ता था चाहे वह अन्य कार्यों में क्यों न दक्ष हो परन्तु नगरीकरण के कारण जातिगत व्यवसाय की अवधारणा समाप्त हो गयी यानी अब कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यवसाय को अपनी योग्यता एवं प्रतिभा के आधार पर अपनाता है तथा जातिगत बाध्यता समाप्त हो गयी है। नगरीकरण के प्रभाव का अध्ययन करनें वाले विद्वानों की मान्यता यह थी कि जैसे–जैसे नगरीकरण बढ़ेगा वैसे–वैसे जातिवादी मनोवृत्ति में कमी आयेगी किन्तु समकालीन नगरों के अध्ययन से यह पता चलता है कि जाति–व्यवस्था का घोर राजनीतिकरण हो रहा है। इसके कई प्रमाण भी देखने को मिलते है जैसे स्वतन्त्रता के बाद भारत में जाति सभाओं एवं महासभाओं की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। जाति के नाम पर पत्र–पत्रिकायें, राजनैतिक एवं सामाजिक संगठनों की मात्रा में भी वृद्धि हुई है तथा स्थानीय स्तर से लेकर संसदीय चुनावों तक को जाति व्यवस्था ने प्रभावित किया है यहाँ तक की प्रमुख राजनीतिक पार्टीयों द्वारा चुनाव में प्रत्याशियों को उतारनें में क्षेत्र में जातिगत समीकरण के अनुसार ही उसी जाति के प्रत्याशी को मैदान में उतारने की प्राथमिकता दी जाती है।

नगरीकरण ने **विवाह संस्था** को भी प्रमुख रूप से प्रभावित किया है उसमें भी हिन्दू विवाह को और भी ज्यादा प्रभावित किया है। पहले हिन्दू विवाह को केवल मात्र एक धार्मिक संस्कार माना जाता था जिसका सर्वप्रमुख उद्देश्य धर्म होता था लेकिन अब महानगरों में उत्पन्न नाभिकीय परिवारों में विवाह का सर्वप्रमुख उद्देश्य धर्म न होकर 'सेक्स' और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो गया है जो सामाजिक समझौते का रूप लेता जा रहा है। श्राद्ध एवं तर्पण जैसे धार्मिक कृत्यों में गिरावट आने से अब पुत्र जन्म को ही विवाह का अन्तिम लक्ष्य नहीं माना जाता है। नगरीकरण के कारण अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह का भेदभाव समाप्त हो गया है तथा अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन भी तेजी के साथ बढ़ा है। आवश्यकतानुसार तलाक लेने में भी अब लोग नहीं हिचकते यहाँ तक की अब स्त्रियों को भी तलाक का अधिकार प्राप्त हो गया है। विवाह पूर्व या विवाहेत्तर मैथुन (सेक्स) के लिए परस्त्रीगमन एवं परपुरूषगमन के प्रति लोगों की मनोवृत्ति उदार हो रही है। **प्रमिला कपूर** द्वारा दिल्ली महानगर में किये गये एक ऐसे अध्ययन में 55 प्रतिशत ऐसी स्त्रियों का अनुपात पाया गया जिनका कहना था कि किन्ही विशेष परिस्थितियों में यदि किसी दूसरे पुरूष के साथ

सम्भोग हो जाता है तो वे अपने पति से आशा रखेंगी की वे उन्हें माफ कर दे तथा ऐसी स्त्रियों की संख्या भी अधित थी जो कभी कभार विवाह की परिधि से बाहर चुम्बन, हाथ पकड़नें या आलिंगन की सीमा तक सेक्स सम्बन्धी स्वतन्त्रता की भी पक्षधर तथा समर्थक थीं।

प्रेम विवाह एवं विधवा विवाह में भी तेजी आयी है। जीवन साथी के चयन हेतु लोग पत्र एवं पत्रिकाओं में विज्ञापन दे रहे हैं तथा अनेक साइटों जैसे शादी डाट काम, जीवन साथी डाट काम का सहारा ले रहे हैं तथा अनेकों मैरिज व्यूरों की भी स्थापना हो चुकी है। वर्तमान में महानगरों की भौतिकतावादी एवं भोगवादी संस्कृति ने युवकों एवं युवतियों को इतना प्रभावित किया है कि अब वे बिना विवाह किये ही पति–पत्नी की तरह साथ रह रहे हैं जिसको **'लिव इन रिलेशनशिप'** कहा जा रहा है। ऐसे सम्बन्धों को हमारा परम्परागत भारतीय समाज अच्छा नहीं मानता लेकिन कोर्ट ने ऐसे सम्बन्धों को भी मान्यता प्रदान कर दी है।

नगरीकरण में वृद्धि के कारण हमारे समाज में **वृद्ध व्यक्तियों की स्थिति** काफी दयनीय एवं उपेक्षापूर्ण होती जा रही हैं। पहले भारतीय समाज के परिवारों में वृद्ध जनों का सम्मान ही नहीं होता था बल्कि उनके आदेशों का पालन भी परिवार के लोग त्वरित गति से करते थे लेकिन आज के महानगरीय परिवारों के ऊपर महानगर की लोकलुभावनी, भौतिकतावादी तथा भोगवादी संस्कृति इतनी हावी हो गयी है कि अपने बच्चे ही बूढ़े माता–पिता को अपने पास नहीं रखना चाहते जब कभी इस मुद्दे पर उनसे बातचीत की जाती है तो वे अपनी व्यस्तता का रोना रोते हैं हमें (लेखक को) एक बात समझ में नहीं आती कि वे वास्तव में व्यस्त रहते हैं या अपने बूढ़े माता–पिता के लिए समय ही नहीं निकालना चाहते क्या वे अपने बीवी, बच्चों के लिए समय नहीं निकालते? वृद्धाजनों की समस्या का सबसे प्रमुख कारण बच्चों का पढ़–लिखकर नौकरी करना या विदेश चले जाना है जहाँ वे अपनी व्यस्तता के कारण ज्यादा समय तक अपने पास अपने बूढ़े मां–बाप को नहीं रख सकते या रखना ही नहीं चाहते। पहले वृद्ध व्यक्ति परिवार के छोटे बच्चों में संस्कार के बीज बोते थे परन्तु आज उनका स्थान इंटरनेट, मोबाइल, सोशल मीडिया तथा सोशल साइटों ने ले लिया है तथा इन्हीं साधनों के जरिये बच्चे संस्कारित हो रहे है। पहले बच्चे अपने दादा–दादी तथा नाना–नानी के पास बैठते थे तथा उनसे ज्ञान और संस्कार की बात सुनकर लाभान्वित होते थे पर आज वे अपना समय इनके पास गुजारने की जगह मोबाइल पर वीडियों देखनें, गेम खेलनें, टी0बी0 देखनें, अश्लील साइटों से अश्लील ज्ञान अर्जित करनें में व्यतीत कर रहे है। जब तक माता–पिता कुछ देते हैं तब तक उनका सम्मान होता है जैसे ही उनका शरीर कमजोर पड़ जाता है तथा वे आर्थिक रूप से भी कमजोर हो जाते हैं तभी उनके साथ अपने ही परिवार में अपने ही लोगों द्वारा दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है तथा वे अपने ही परिवार में उपेक्षित महसूस करते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जो वृद्धाजन पेंशन पाते हैं उनका सेवा सत्कार काफी किया जाता है क्योंकि उनको इस अर्थयुग में दुधारू गाय की तरह देखा जाता है परन्तु ऐसे पेंशनभोगियों की संख्या हमारे समाज में काफी कम है **''ह्यूमन डेवलपमेन्ट रिपोर्ट'' 2011** के मुताबिक देश में महज 10 प्रतिशत कामगार ही पेंशन योजना में शामिल हैं जो काफी कम है।

आज नगर **स्त्रियों को प्रगतिशील और स्वावलम्बी** बना रहा है। नगर उनके सामनें रोजगार के अनेक विकल्प प्रस्तुत कर रहा है। परिणामस्वरूप महिलाएं चिकित्सक, प्रोफेसर, शिक्षिका, पत्रकार, एडवोकेट, जज, प्रशासनिक अधिकारी, राजनीतिज्ञ आदि के रूप में अपनी सेवाएं प्रदान कर आर्थिक लाभ प्राप्त कर रही हैं। वे विभिन्न क्षेत्रों में छोटे से लेकर बड़े पदों पर पदासीन हो रही हैं। यदि देखा जाय तो नगरों के उच्च शिक्षित और प्रगतिशील समाज में कन्या भ्रूण की घटनायें हमारे ग्रामीण

और निम्न शिक्षित तथा परम्परावादी समाज की तुलना में ज्यादा होती हैं। जिसके लिए महिलाएं भी कहीं न कहीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार हैं क्योंकि यदि एक महिला यह चाह ले कि उसके शरीर में पल रहे कन्या भ्रूण की हत्या नहीं होनी है तो दुनियां की कोई ताकत ऐसा नहीं कर सकती पर यहाँ तो स्थिति ही उलट है महिला ही महिला की दुश्मन है। यहीं नहीं बल्कि धरती पर एक महिला को आने से पहले ही गर्भ में ही अपनी दुश्मनी निभाने में कोई कसर नहीं छोड़ती और कन्या भ्रूण हत्या में अपना सहयोग प्रदान करती है। आज भी परम्परावादी और अर्थ प्रधान युग में पुत्र जन्म को महत्व दिया जाता है क्योंकि मान्यता अनुसार पुत्र तो कुल का दीपक होता है तथा वहीं स्वर्ग तक पहुँचाता है तभी तो पुत्र जन्म होने पर खुशियाँ मनायी जाती है तथा सीना चौड़ा हो जाता है कहा जाता है कि बाबू हुआ है, पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है जबकि वहीं लोग पुत्री के जन्म पर भारी मन से कहते है कि लक्ष्मी का आगमन हुआ है बेटी हुई है या कुछ लोग तो बताते ही नहीं की क्या हुआ या नहीं हुआ बल्कि कुछ महिलाएं तो छाती पीट–पीट कर दहाड़े मारकर रोती भी हैं की लड़की हो गयी। नगरों की भाग दौड़ भरी व्यस्ततम जीवन में ज्यादातर दम्पत्ति एक ही सन्तान चाहते हैं ऐसा चाहनें के प्रति उनका मानना होता है कि जब एक ही सन्तान तो क्यों न लड़का ही क्योंकि उससे उनकों कई फायदे नजर आजे हैं जैसे–कुल का दीपक मिल जायेगा, स्वर्ग पहुँचा देगा, सुरक्षा और इज्जत से भी बेखबर कर देगा, दहेज देनें की समस्या से निजात मिल जायेगी बल्कि उसी के माध्यम से उसके विवाह में मोटी रकम दहेज के रूप में प्राप्त होगी इसी सब सोच की वजह से नगरों में कन्या भ्रूण हत्या की घटनायें ज्यादा घटित हो रही हैं।

महानगरों में **सेक्स का एक व्यापक बाजार भी वेष्या–वृत्ति के रूप में व्यापक** पैमानें पर व्याप्त है। निम्न वर्गीय परिवार के साथ–साथ उच्च शिक्षित, संभ्रान्त एवं धनाठ्य परिवार की महिलायें भी विलासिता का जीवन जीने के लिए इस व्यवसाय से जुड़ती हैं। उदाहरणार्थ 6 फरवरी, 2012 आई0बी0एन0 7 टी0बी0 पर एक न्यूज चल रही थी कि 5 सितारा होटल में रंगेहाथ पकड़ गई एक तमिल हीरोइन, जिसकी शर्त होती थी कि वह हवाई जहाज से आयेगी और हवाई जहाज से ही जायेगी यह हीरोइन 2 घण्टे के तीन लाख रूपये लेती थी उसी चैनल पर एक और सीरियल की हीरोइन रंगे हाथ पकड़ी गयी बतायी जा रही थी वह घण्टे के लि 1 लाख 50 हजार रूपया लेती थी। इस प्रकार हम देखते है कि देह का यह व्यापार घण्टों एवं रातों के हिसाब से किया जाता है। **''सेक्स टूरिज्म'' यानी ''यौन पर्यटन''** की एक महत्वपूर्ण अवधारणा विकसित हुई है इसका अर्थ पर्यटकों का धन खर्च करके आसानी से मनचाहा सेक्स उपलब्ध होने वाले क्षेत्रों में यात्रा करना है। **1998 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन** ने अपने सर्वे में कहा था कि थाईलैण्ड, फिलीपीन्स, इण्डोनेशिया एवं मलेशिया के घरेलू उत्पाद का 2 से 14 प्रतिशत भाग यौन पर्यटन से आता है।

हमारे देश में शहरी आबादी का प्रतिषत 2001 की जनगणना में 27.81 था जो 2011 में बढ़कर 31.16 हो गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार हमारे देश में 3 शहर ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या एक करोड़ से भी अधिक है और 53 शहरों की जनसंख्या 10 लाख से अधिक है। 1901 में हमारी शहरी आबादी 25 मिलियन थी जो 2001 में बढ़कर 285 मिलियन और 2011 में 377 मिलियन हो गयी इस तरह से देखा जाय तो 2001 से 2011 में हमारी शहरी जनसंख्या में 9 करोड़ 20 लाख लोग और जुड़ गए। इस प्रकार अनियन्त्रित जनसंख्या वृद्धि के कारण नगरों में बेरोजगारी, गरीबी, भूखमरी, प्रवासी समस्याएं, निवास की समस्याएं, अपराध, पारिवारिक विघटन, वैयक्तिक विघटन, भ्रष्टाचार तथा मलिन बस्तियों में वृद्धि हो रही है।

जितनी तेजी के साथ नगरीकरण हो रहा है तथा हम तकनीकि रूप से समृद्ध हो रहे हैं उतनी ही तेजी से **हमारे रिश्तों के बीच दूरियों की खाई बढ़ती जा रही है।** टेलीविजन, इण्टरनेट, मोबाइल इत्यादि के विकास से हमारे काम आसान हुए हैं तथा बच्चों की पढ़ाई में भी मदद मिल रही है तथा हम अधिक से अधिक औपचारिक होते जा रहे हैं यहाँ तक की बच्चों एवं माता–पिता के बीच भी दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। माता–पिता को बच्चों के पास तथा बच्चों को माता–पिता के पास बैठने की फुर्सत ही नहीं मिलती या वे बैठना ही नहीं चाहते किसी को किसी से मिलनें–मिलानें की आवश्यकता ही नहीं महसूस होती सभी अपने ही दुनिया में व्यस्त और मस्त रहते हैं। **मिसौरी यूनिवर्सिटी के विद्वानों का कहना है** कि अगर आप डिजिटल उपकरणों का स्विच ऑफ नहीं करते हैं तो आपके पारिवारिक रिश्ते कमजोर पड़ सकते हैं।

नगरीकरण में वृद्धि के साथ ही **धार्मिकता में भी कमी** देखने को मिल रही है। अब एक ही नगर में तथा एक ही फैक्ट्री में देश के विभिन्न भागों से विभिन्न जातियों, धर्मो, समुदायों, लिंगों एवं भाषाओं के व्यक्ति साथ–साथ काम करते हैं जिससे धार्मिक भेदभाव की प्रवृत्ति समाप्त हो रही हैं। इस समाज का सबसे बड़ा धर्म भौतिक सुख और धन हो गया है जिसको व्यक्ति किसी भी तरह अधिक से अधिक प्राप्त करना चाहता है। धार्मिक अनुष्ठानों से भावनाएं कम एवं दिखावा ज्यादा जुड़ा होता है। धार्मिक केन्द्र तथा उनके महन्त, बाबा भ्रष्टाचा और अनैतिकता के केन्द्र बिन्दु बनते जा रहे है जिनका प्रमुख उद्देश धन, सुख समृद्धि प्राप्त करना होता है। अब मानवीय समस्याओं की व्याख्या ईश्वरीय सन्दर्भ में न करके तार्किक रूप से की जाती हैं। पवित्रता–अपवित्रता एवं अन्धविश्वासों से सम्बन्धित मानसिकता में कमी आयी है।

नगरों में विभिन्न देश, प्रान्त, धर्म, जाति, प्रजाति, क्षेत्र तथा समुदाय के लोग रहते हैं, अर्थात् **महानगर विभिन्न संस्कृतियों का पुंज** है। इस विभिन्नता के कारण व्यक्ति वहाँ एक–दूसरे से अलग रहते हैं जिससे नगरीय जीवन में एकरूपता नहीं आ पाती तथा उनमें हम की भावना का विकास नहीं हो पाता। कोई दिन में सोता है तो कोई रात में काम करता है आज कोई रोजगार में लगा है तो दूसरे ही दिन बेरोजगार हो जाता है इस प्रकार की अनिश्चितता हर समय बनी रहती है। अन्दर ही अन्दर महानगर के मूलनिवासियों तथा प्रवासियों के बीच संघर्ष और तनाव बढ़ते रहते है। नगर के मूल निवासियों को यह डर बराबर सताता है कि भविष्य में प्रवासी उनकी रोजी–रोटी भी छिन लेगा और वे बेकार हो जायेंगे उदाहरणार्थ– महाराष्ट्र में मुम्बई इसका ज्वलन्त उदाहरण है जहाँ मराठी नेता अक्सर इस बात को लेकर आन्दोलन करते रहते हैं कि उत्तर प्रदेश और बिहार के प्रवासी यहाँ से चले जाएं। यह उस महानगर के मूलनिवासियों की संकीर्ण सोच है जो भारतीय संविधान की मूल भावना के भी खिलाफ है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नगरीकरण ने समाज के सभी पक्षों को प्रभावित किया है। ऐसा शायद ही कोई क्षेत्र हो जिस पर इसका प्रभाव न पड़ा हो। नगरीकरण मानवीय समाज में व्यापक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं क्योंकि नगरीकरण ग्रामीण एवं पारम्परिक जीवन–शैली से अलग प्रकार की एक जीवन शैली का बोध कराता है। आज हमारे जीवन की लगभग प्रत्येक गतिविधियाँ जैसे–जनसंख्या, जाति–व्यवस्था, वैवाहिक संस्था, परिवार, तलाक, जन्म दर एवं मृत्यु दर नगरीकरण से प्रभावित हुई हैं। लोगों की महत्वाकांक्षायें आकाश छू रही हैं जिसके कारण मानसिक तनाव बढ़ा है परिणामस्वरूप वैयक्तिक विघटन, पारिवारिक विघटन और सामाजिक विघटन के रूप में शराबखोरी, नशाखोरी, आत्महत्या, हत्या, विवाह–विच्छेद, दहेज, वेश्या–वृत्ति, अपराध, बाल अपराध, श्वेत व्यसन अपराध, पर्यावरण प्रदूषण आदि समस्याएं उग्र रूप लेती जा रही हैं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. योगेश, अटल, 2016, भारतीय समाज नैरन्तर्य और परिवर्तन, नोएडा : पियर्सन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड.
2. सिंह, बी0एन0 और सिंह, जनमेजय, 2015, नगरीय समाजशास्त्र, जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स.
3. मामोरिया, चतुर्भुज, 2012, प्रादेशिक एवं भारत का भूगोल, आगरा : बंसल पब्लिशिंग हाऊस.
4. पाण्डेय, एस0 एस0, 2009, समाजशास्त्र, नई दिल्ली : टाटा मैग्राहिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड.
5. गुप्ता, आशीष दास, 2007, भारत में शहरी समाज, नालन्दा मुक्त विश्वविद्यालय
6. राव, बी0 पी0, तथा शर्मा नन्देश्वर 2008, नगरीय भूगोल, गोरखपुर : बसुन्धरा प्रकाशन
7. सिंह, जे0पी0, 2013, समाजशास्त्रः अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, दिल्ली : पी0 एच0 आई0 प्रा0 लि0.
8. बंसल, सुरेश चन्द्र, 2018, नगरीय भूगोल, मेरठ : मीनाक्षी प्रकाशन.
9. सिंह, जे0 एन0, एम0 ए0 एस0 वाई0– 09 भारत में नगरीय समाज, इलाहाबाद : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय.
10. आई0 बी0 एन0–7, 6 फरवरी, 2012.
11. योजना, फरवरी, 2008, पृ0 23–24.

Teacher Empowerment: Today's Need

Dr. Shikha Verma
Associate professor
Department of B. Ed.
K. S. Saket P. G. College, Ayodhya (U.P.)

Abstract

The teacher's role has always been important in the educational process but rapidly changing social, economic, political conditions have affected the teaching-learning process and the status of the teacher in today's era of globalization, the activities of teacher empowerment can provide a new ground for continuous creation in the conditions of learning and for this to develop a useful and inspiring direction. Teacher empowerment is not an event rather it is the process in which the teacher's ability, imagination, ability and control, management, self-assessment and self-capacity are enhanced as per the expectations of the changed contexts of education. The issue of teacher empowerment has timely importance, which will emphasize to make the teacher creative, imaginative, free, dynamic. He will be the creator of such an educational system in which a system of self-instruction, self-education and self-assessment can be developed.

The sole purpose of education is to transform the society, nation and the world through empowering the individual. In today's global age, the concept of education is becoming very complex and challenging. Knowledge, skills, aptitude and values are the basic foundation of human life. To achieve this, many thinkers, educationists and social reformers have been presenting different designs of education from time to time. Gandhiji's basic education, Sri Aurobindo's education, Tagore's innovative use of Shantiniketan and the establishment of Gurukul in the early periods are obvious examples. The teacher has an important role in all of these.

The teacher's role has always been important in the educational process, but it is bound to change over time. Rapidly changing social, economic, political conditions have affected the teaching-learning process and the status of the teacher who plays a major role in it. To reconcile the changing circumstances, their position and role is strongly demanding a change. Therefore, the issue of effectiveness of teaching and teachers has become 'universal' and not linked to any particular country. It is very important to describe the issue of teacher empowerment in the modern context, so that in today's era of globalization, the activities of teacher empowerment can provide a new ground for continuous creation in the conditions of learning and for this to develop a useful and inspiring direction.

Teacher Empowerment - Meaning and Concepts

Teacher empowerment is a positive thinking developed for the upliftment of the teachers. It is a complex multidimensional concept. Teacher empowerment is not an event

rather it is the process in which the teacher's ability, imagination, ability and control, management, self-assessment and self-capacity are enhanced as per the expectations of the changed contexts of education. Real empowerment enhances the qualifications of teachers. It is a bipolar process that enables the teacher to fully identify himself and know his abilities. Through the process of empowerment, a teacher can ensure its participation in study subject matter, teaching process and management. Empowerment refers to developing strength and efficiency, so that the individual's participation can further be developed. It is a qualitative concept and a process rather than a final product. It emerges from the process of development. With the emergence of the concept of Self regulated Learning and Multi Learning, special attention was paid to teaching effectiveness and teacher empowerment.

Teacher Empowerment in the Current Context

In the last two decades, new insights have developed through academic researches. In the 1960s, it has come to light from the researches of Coleman and Christophe Jackson that whether the role of schools is important or not, but the role of teacher is important in influencing the learning of students. On the basis of research of Jarey, Brophy and Tomas Good (1986), this confusion has been proved to be untrue that teachers do not have any importance in the learning of students. Subsequently Sanders and Horn (1994), Wright, Horn and Sanders (1997) found in their studies that classroom teachers have a greater influence on students' performance and that the most important factor influencing student learning is the teacher. Also, there is variation in the effectiveness of teachers. Effective teachers are effective for students of all types of achievement levels, despite individual variation in the classroom. Conversely, students studying under the patronage of ineffective teachers show unsatisfactory progress.

Based on the above researches, education has become student-centered rather than teacher-centered at the present time. In an ideal education system, the teacher's role is that of the administrator of learning situations, who arranges according to the list of girl students, aptitude, qualification, entry, behavior and ability. In this system, the teacher is expected to become a source of inspiration rather than the role of a director. The role of the student is that of investigator, investigator and a wanderer who finds his own path.

In this way, the issue of teacher empowerment has timely importance, which will emphasize to make the teacher creative, imaginative, free, dynamic. He will be the creator of such an educational system in which a system of self-instruction, self-education and self-assessment can be developed.

Why Teacher Empowerment Is Necessary

No demand is justified without justifying it. Therefore, the teacher class also has to clarify what conditions and needs it wants to fulfill. In consultation with various scholars, several facts emerge in favor of empowerment.

1. For a strong position in society:

Although the teacher enjoys a prestigious position in the society, yet the impact of this reputation on the society has been negligible. In today's global, information

technology and technology era, the role and position of teacher in society is becoming secondary. Today, there is a great need of empowerment for the teacher to maintain his strong and prestigious identity in the society.

2. For greater autonomy

For the best performance of any person, it is necessary that they work under their own favorable circumstances. In our country, the teacher class has hundreds of responsibilities but autonomy is not even a little. In such a situation, the teacher is not able to discharge his responsibility satisfactorily on his personal skills. Therefore, teacher empowerment is being demanded for greater autonomy.

3. For confidence

In the era of globalization and information technology, two important factors of the 21st century, the teacher class has lost its confidence while confidence is the first condition for teaching work. If a class makes you feel disabled, it will surely lack confidence and will not be able to perform its duties efficiently. Therefore, there is a need to think deeply about empowerment for the recovery of confidence.

4. For functionality and efficiency

Since the teacher class has been a source of inspiration for the society, it is very important to be functional and efficient. So that he can set competent example in the society and make his significant contribution in the upliftment of the society. There is also pressure on this class to prove its efficiency by giving better results to the society, so this class also wants its empowerment to achieve better conditions of activity and efficiency.

5. For self control

The state of control is the aspect of personality on the basis of which a person attributes the results of his or her work to external or internal factors. The state of control is of two types - first, one in which the person attributes the result of his act to fate, coincidence, manager or any other person.

Second, the one in which a person attributes the results of his work to his effort, his strategy, or method of action. Based on research, it has been proved that effective teachers have the status of another type of control. But in the present time, the teacher class does not consider themselves responsible for the failure of their work, and considers the policies related to the system and the students, so teacher empowerment is being demanded for preparing the second class teacher.

Is the disability anywhere self-made?

The concept of teacher empowerment was not even mentioned till some time ago, what happened in these years that despite the progress in the field of education, there was a demand for teacher empowerment. Is the teacher really disabled? Or does he want to prove himself to be disabled by getting caught in the maya trap of Indian politics and demands additional facilities from the state and central government? Is he really looking for his role in the era of globalization? In searching for answers to these questions, the fact also emerged that somewhere the teachers themselves is responsible for his disabilities. The reasons for this are as follows-

1. Lack of knowledge

One of the main reason for the disability of the teacher class is his retirement from self-education. Due to this, he is unaware of the invention and innovation happening in the field of education. Without self-education and new knowledge, there is a lack of creativity in it. Today, the teacher class is going on a worn-out rut instead of finding new ways, creating new standards and norms and creating new ideas. This makes his classroom communication ineffective and monotonous. As a result, his confidence wanes. This lack of confidence leads to his disability.

2. Lack of solidarity

Although there are many teachers' organizations, the leaders of these organizations, due to being stuck in politics, hinder the unity of the teacher class. In the absence of unity, those organizations are not able to put positive pressure on the government, due to this, many problems of teachers such as the problem of regulation, problem of salary revision, problem of service conditions, etc. are not solved and they become a victim of frustration.

3. Difference in economic condition

After the Sixth Pay Commission, certainly the salary of the teacher class is reasonably large, but the benefit of the sixth salary is given only to the teachers of government and aided schools and colleges. Thus our country is full of private and self funded courses. Teachers who teach these courses are still underweight. Such a difference in the salaries of teachers of two classes teaching at the same level creates a hurdle in giving their best to teachers of other classes.

Teacher empowerment measures

It will be expedient to discuss measures for teacher empowerment after knowing the need for teacher empowerment and the reasons for disarmament.

1. Development of educational awareness in society

Today, awareness about education has increased in urban areas, due to which the need, importance and prestige of the teacher has also increased. But to strengthen the teacher class, such awareness should be everywhere in the country. This is possible only through the spread of education in rural areas. Only then will the position and role of the teacher in the society be strengthened.

2.Lack of control of bureaucracy

Excessive bureaucratic control also impedes the efficiency, functioning, autonomy and empowerment of the teacher class. For the development of self-respect of teachers, it is necessary to give them more autonomy for the development of creativity, to increase their education effectiveness. It is a harsh truth that under the control of bureaucracy, the teacher often finds himself helpless in front of a clerk. In such a situation, the teacher can be empowered by lack of control.

3. Improvement of education system

In order to make imaginative, developing and effective challenges, inconsistencies and new expectations related to the changes that are coming in the context of global learning and teaching learning in information technology, there is a need to improve

education system. Teachers will be able to play their effective role only if there is a comprehensive improvement in the purpose of education, curriculum, teaching methods, assessment methods.

4. Development of a sense of self-study

In today's changing times, the teacher has to think that he is a student along with being a teacher; he should expand his range of thinking and make his teaching effective, his knowledge, planning, instruction, communication, management and evaluation. The techniques should be assimilated so that it can merge its steps with time. Today, there is a need that teachers constantly ponder, contemplate their situation and try to improve it progressively.

5. Creation of strong teacher organization

The International Commission for Education has presented a chapter on the organization in its report 'Adhigam Interdhani Nidhi', so it is very important to have a positive organization of teachers for teacher empowerment. Only through the organization, teachers will be able to make a positive impact on policy making by the state and can make policies favorable to them. Through this organization, they will be able to maintain their reputation in the society.

6. Improvement in teacher education

For teacher empowerment, it is necessary that its foundation be strengthened first. For this, teacher education has to be made timely and effective. For this, technical knowledge and pedagogy will have to be harmoniously used. Today, the biggest obstacle to teacher empowerment - 'teacher deferment' is not the synergy between the teacher's cognitive side and the technical side. Therefore, it is very important to develop both cognitive and technical aspects of future teachers through teacher education. This will increase the confidence of teachers and can be increased towards empowerment with confidence.

7. Empowerment by various institutions

Teacher is the biggest investment for the society, this thing should be understood by the society and the state. Efforts should be made towards teacher empowerment by various programs and institutions. Programs like Sarva Shiksha Abhiyan, Life Skills etc. and institutions like National Council for Teacher Education can do important work in this direction. The government should also make concerted efforts towards teacher empowerment. The process of empowerment should not be limited to a few institutions, but should also be adopted at national, state level, district level and local level. The broad role of the teacher in determining the curriculum, curriculum, supporting educational material, text books and educational policy, well planned refresher programs etc. can also be helpful in the efficiency and empowerment of the teacher.

It is clear that the future of India lies in the future of its teachers. Without a strong teacher class, the foundation of India's future cannot be imagined. Therefore, it is the responsibility of every university, higher education institute, education college to provide a dynamic and concrete form to the process of teacher empowerment.

References-

1. Agrawal, J. C. (2005), Shiksha Mein Javabdehi, Vinod Pustak Mandir, Agra.
2. Mukhopadhyay, M. (2005), Total Quality Management In Education, Nepa, Delhi.
3. Ghosh A. K. (2001), Teachers Accountability, University News, March.
4. Baghola, G. (2000), Aise Hon Shikshak, Pavan offset, New Delhi.
5. Blaze, Joseph (2003), Impairing Teachers, Sage Publishers Los Angeles.

BUDDH RELIGION AND IT'S CULTURAL HERITAGE

Dr. Neelam Tyagi
Associate Professor, B.Ed. Department
CSSS PG College, Machhara, Meerut

Abstract

At present Buddhism is one of the major world religions. The philosophy of Buddhism is based on the teachings of Lord Buddha, Siddhartha Gautama (563 and 483 BC), a royal prince of Kapilvastu, India. After originating in India, Buddhism spread throughout the Central Asia, Sri Lanka, Tibet, Southeast Asia, as well as the East Asian countries of China, Mongolia, Korea, Japan and Vietnam. Buddhism owes its origin to the socio-economic conditions prevailing in India at that point of time. The Fundamental principle of Buddhism is to follow the middle path. Buddhism teaches its follower to perform good and wholesome actions and to purify and train the mind. These practices are aimed at ending the suffering of cyclic existence. Buddhist emphasizes the principles of harmlessness and moderation. Buddhism does believe in the existence of supernatural beings but it does not ascribe the power for creation, salvation or judgment to them. Buddhism believes that the supernatural beings have the power to affect only worldly events. Thus in Buddhism, India gave birth to a major international religion, while the Hindus continued their way. Buddhism was the world's first missionary religion and won its triumphs through missionary activity. The ancient Buddhist monks who carried the Master's message of peace, love and universal brotherhood were pioneers in such a mission in Human history. Buddhism is the only trans-national religion which has never preached malice against other faiths, nor have its followers ever indulged in a holy war against those of another faith. Buddhism has not won its way by persuasion and never by the sword, nor has it ever used its position or power to compel conformity to its precepts. And whatever its defects, it has unquestionably done much to benefit the human race by introducing and perpetuating a higher standard of conduct in life. One is inclined to bow before the Buddha, not in homage to a deity but in recognition to a superior craftsman in the art of living.

Keyword: Buddhism, *Moksh*, Non-violence, Religion, *Dhamma.*

Introduction:

Founder of Buddhism (Lord Buddha)

The word Buddha' is a title and not a name it means 'one who is awake' in the sense of having "woken up to reality'. Buddha, means the enlightened one'. And Gautam Buddha was one of the greatest religious teachers that the world has seen. His teachings expounded in Buddhism, are immensely popular in India .Thailand .Burma, China. Japan and other South Eastern Countries. The Buddha was bon in 563 B.C. as Siddhartha to Shuddhodana the king of Kapilavastu in Nepal. His mother Mayadevi expired when he was just 7 days

old and he was brought up by his stepmother Gautami. Siddhartha was made to lead a very sheltered life as the astrologers had predicted that he would give up worldly pleasures to follow a different path. The King wanted to avoid this at all costs and so did not let him out of the palace. He hoped that Siddhartha would one day become king. The royal family belonged to the Gautama Gothra of the Sakya dan of the solar race. Their kingdom Kapilvastu was between the Nepalese foothills and the river Raptu. The Shakayas were priestly-warriors, wealthy Knights and landowners.

When Siddhartha had grown into an intelligent young man, he ventured out of his palace one day. and chanced on a few sights that changed the course of his life. During one of his few excursions, Siddhartha saw four things, which opened his eyes towards the harsh realities of life. He saw an old man suffering from the frailties of age, a sick man suffering from disease, a beggar suffering from hunger and he saw a dead body. All these events affected him immensely and Siddhartha finally came to the conclusion that nothing is permanent in life. The infirmities of old age, the pangs of hunger, the pain of sickness and end of fife brought sufferings that he had never experienced. All these events in his life forced him to search for truth that eventually changed his life. This made Siddhartha very sad and he started to rethink his life and began to try to fathom the reason of existence. Seeing him so thoughtful, his father decided to get him married and get his mind off such serious topics. He was married to a beautiful princess called Yashodhara, who soon gave birth to a sort whom they called Rahul.

Still could not understand the meaning of or reason for life and death. Despite this, Siddhartha found no happiness in materialistic pleasures and so left the palace in search of salvation -' Moksh'. He was only 29 years old. He roamed the country, meeting various sadhus and saints in his search for inner peace. He lived the life of a hermit and underwent rigorous' tapasya' to achieve his purpose, but finally, one day he was very tired and so sat under the shade of a tree. He shut his eyes and was blessed with a divine light This was the turning point, as he realized the truth is within every human being. The search outside was pointless. The tree under which he meditated came to be known as the 'Bodhi Tree', the tree of wisdom. And the place where this happened is still known as Bodh Gaya, now in north eastern part of India. It is believed that he attained nirvana on the day of the full moon in the month of Vaishakha. It became a great Holy Day for the Buddhists. It was also on this day Buddha gave his first sermon at Samath, also in the North Eastern India. This is why the Buddhists rotate the prayer wheels in the belief the prayers written on the wheels get dispersed on this day. The day when Prince Siddhartha became Gautam Buddha and again the day when he gave his first sermon at Sarnath.

Soon after his enlightenment the Buddha preached to a small group of the curious and those who heard his word became his disciples. From then on the Buddha devoted the rest of his life to teaching those who sought his advice, his compassion, and his wisdom. The growth in the number of his disciples led to his establishment of the Sangha, the Buddhist monastic order. It was his disciples who passed along his teachings, by word of mouth, from generation to generation. Not until some considerable time after his death were the

words of the Buddha recorded in written form. Finally Buddha liberated himself from the cycle of rebirth and achieved mahaparinirvana also on the auspices of Vesak.

For 45 years, Buddha spread his message of a spiritual life. He did not believe in rituals but pointed to path towards salvation - that of right speech, understanding, determination, deeds, efforts, awareness, thinking and living. According to Buddhism, by following this path one could overcome desires, which were the root cause of grief and misery. Gautam Buddha established a new religion .which had no sects, classes or castes, that teaches the principle "Live and let live". It was Gautam Buddha, who taught Hindus of non-violence and eating vegetarian food. Hindus honoured Gautarn Buddha and bestowed on him the title of 9th incarnation of Vishnu.

The Buddhist Sangha and Morality

Buddhism is unique among religions in a fundamental sense. It does not advocate invocation of any God. Salvation can be attained by controlling one's desire; as desire is the cause of suffering. The original Buddhism had neither God nor Devil. The emphasis was not on prayer but on controlling one's mind. In this sense it was more a worldly philosophy rather than a religion. But with the passage of time it acquired the nature of a religion complete with dogmas and rituals. Buddha's life-story is an eventful one. The most potent institution that Buddha established during his lifetime was the Sangha (monastic order) into which men were admitted irrespective of their caste. The members of the Sangha who were known as Bhikkus (beggars) had to lead a rigorous life devoid of all desires. Their daily needs were limited to those necessary for physical survival. Their only possessions were a begging bowl, yellow coloured loin cloth, a walking stick if necessary and a pair of sandals for the more delicate. They were to sustain themselves by the alms they received but were forbidden from expressly begging for alms. Alms were to be accepted if given willingly and if not the Bhikkus were to move on to the next house. Thus came into being a clergy, but which unlike its Hindu counterpart was not based on caste and which was oriented towards missionary activities rather on the performance and upholding of rituals.

The break of Buddhism from other forms of worship that constituted Hinduism was almost complete in the lifetime of Buddha This took the form of non-recognition of any personified Gods, spirits or the devil, and the near absence of rituals, repudiation of the caste system and the intense missionary activity of the monks which included rendering social service with the aim of alleviation of human suffering. Another significant aspect was that in the early stages all followers of Buddha were enrolled as members of the Sangha hence it was completely a missionary religion.

Relations Between Buddhism and Hinduism

Buddhism continued to grow steadily in the first few centuries after its birth. The reasons were its universal appeal, humane outlook, emphasis on missionary and social work and finally its peaceable methods that limited confrontation with the established local religions to a philosophical level. Thus even kings who patronized Hinduism did not feel it necessary to make a distinction between Hinduism and Buddhism in policy matters.

Buddhism normally returned the sympathy of the ruling power by giving it a moral legitimacy amongst the lay people. And although Brahmin orthodoxy did grudge the inroads made into it by the new faith there hardly ever was there active confrontation between the two faiths. On the contrary there was an exchange of beliefs and attitude between Hinduism and Buddhism. The Hindu insistence of vegetarianism and non-violence (Ahimsa) are borrowed from Buddhism Hinduism in turn tried to absorb Buddhism within itself by making Buddha one of the incarnations of Vishnu. The growth of Buddhism received a tremendous boost in the 3rd century B.C.E. when Samrat Ashokla Maurya whose empire covered nearly the whole of India (including present-day Pakistan and Afganistan) was converted to Buddism.

Samrat Ashoka elevated Buddhism to the level of a stage religion and sent missionaries not only to all part of India but also to Sri Lanka, West Asia, Central Asia and China. In his days Buddhism is said to have spread in varying degree upto Egypt and Sounth-Western Russia. Since the days of emperor Ashoka, Buddhist missionaries built majestic monasteries known as Viharas, Stupas and Chaityas. The simple ascetic character of Buddhism had received its first dent under the pampering effect of royal patronage. The religion continued to grow nevertheless. During the reign of Ashoka the third Religious Council was held at Pataliputra which was the capital of Ashoka's vast empire. But that Ashoka was not inimical to Hinduism is evident from one of the titles that he took viz Deva-Naam-Priya (Beloved of the Gods).

After the fall of the Maurya Empire, Buddhism did not receive official patronage on a comparable scale for a long time. During the period after the Maurya Empire, India was beset with invasions from tne Indo-Greeks, Kushanas, Parthia's etc. But most of these invaders acculturated themselves in a few years after their coming and many of their kings embraced either Buddhism or Hinduism. Prominent among them were, Menander (Milinda) who was an Indo-Greek and to whom is ascribed the Buddhist treatise called Milinda-Panho in which the king, posed certain questions to which answers were given by a Buddhist Sage called Nagasena. The next major royal patron of Buddhism was Kushana who was a Mongol king who ruled north India, Pakistan and Afghanistan in the 1st century B.C.E. In his reign) the fourth religious council was held at Jalandhara (Modern Jullundar in Indian Punjab). Now Buddhism had spread far and wide and had received royal patronage in varying degrees almost continuously from one king or another since Ashoka.

By the time the fourth religious council was held, the religion had vertically split up into two schools. One school had elevated Buddha to the status of a God and introduced worship of the Buddha's image (idol), it also evolved elaborate rituals which were derived largely from Hinduism, and gave up the rigorous ascetic life in monasteries, discarded Pall and accepted Sanskrit as the literary medium. These changes had far-reaching effects in nan-owing the breach between Buddhism and Hinduism but at the cost of departing from the essence of the way of life that Buddha established. This school was called the Mahayana {Greater Vehicle) school or the northern school of Buddhism. On the

other hand the Hinayana (Lesser Vehicle) school stuck to the original character of Buddhism with its emphasis on rigorous and simple living although idol worship gradually made its way into Hinayana also. This school is also known as Theravada (from Staieryavada I. e. principle of stability) is mainly prevalent in Sri Lanka, Burma and Thailand.

Despite the split Buddhism continued to grow steadily up to the reign of the Guptas. Since the reign of the Gupta kings (3rd and 4th centuries C.E.) the growth of Buddhism came to a standstill and gradually the decline set in. The reasons for this decline could be many but the principal one was to be the absence of royal patronage since the Gupta period, although there was no persecution either. The last known royal patron of Buddhism was Harsh Vardhana who ruled over a large part of northern India around the 7th century C.E. Harsha who was an ardent worshipper of the Hindu deity – Shiv, did not embrace Buddhism, but he extended many favours to the religion. During his reign the fifth religious council was held at Prayaga (Allahabad).

No significant event took place thereafter in the history of Buddhism. But it is certain that upto the beginning of the Gupta period the religion was on its ascendance and to following in India was significant. From the Gupta period Hinduism seems to have undergone a revival, partly under the patronage of the Gupta kings. Buddhism then onwards was definitely on the decline. The intellectual onslaught of Brahmanic philosophers like Adi Shankaracharya seem* to have had its toll in emasculating what was once a cohesive and vibrant way of life. Whatever the reasons, it is certain that the following of Buddhlwn declined sharply during and after the Gupta period.

It survived nominally an Intellectual tradition kept alive by the select monk who controlled the monastic universities like the one at Nalanda. These universities were highly respected as seat of learning and attracted students from abroad, Fa Hien, Huien Tslang and I-Tsing who came from China were said to have studied at Nalanda and centers of Buddhist leaning. But from the 5th century Onwards, Buddhism declined as the religion of the masses. Its following seems to have been absorbed into Hinduism, although this could have also been the result not of formal conversion but of a gradual relapse of the Buddhist laity into the parent religion. The portrayal of Buddha as an incarnation at the Hindu deity Vishnu, and the absorption or many Hindu attitudes by Mahayana Buddhism, along with the absence of royal patronage to Buddhism (and the attention of this patronage to Hinduism during Gupta times) must have contributed to this effect Whatever Buddhists mat remained constituted elite who Inhabited the Monasteries and rarely ventured out of them Missionary activity was nearly absent. The last fatal blow to this once religion came from non-Indian impetus- Muslim invasion of north India in the 12th century. The defeat of Prithviraj Chauhan and Jaichandra Gahadawal (Rathore) in 1192 and 1194 respectively by the Afghan raider. Mahmud Ghori opened up the Gangetic plains to the ruthless invader where the Buddhist (and Hindu) centers of learning were located. The destruction of monasteries and the slaughter of monks that followed the

headlong rush, of the Muslim invaders, down the Ganges stilled the agony of this once glorious order into the silence of death.

Thus passed out of existence in the land of its birth a religion that touched the lives of millions of humans not only in India but in China, Japan, Koera and other counters of central Asia and south –East Asia. Buddhism in India was to remain to dead religion until the 20th century.

Buddhism Resurrected in India **in** the 20th **Century:** In the mid 20th Century. Dr. B,R. Ambedkar, who was one of the architects of India's Constitution. **gave** Buddhism a fresh lease of life by embracing it a few years after India achieved independence. A significant number of members of those castes who were dented equal rights in the Hindu caste hierarchy also embraced Buddhism. Today an over-whelming proportion of Buddhists in India are these recent converts who term themselves as Nava-Baudha or Neo-Buddhists. A comparatively recent event of significance was the 6th religious council held at Rangoon in 1954 which came 1300 years after the 5th council held at, Prayaga in 643 C.E. in the reign of the last major pan-Indian emperor - Harsha Vardhana. The Rangoon council was also the first one to be held outside India.

Buddhism and Hinduism - Umbilical Marks

In the course of Its eventful history Buddhism which began as a departure from the ritualism of the Hindu religion gradually adapted and absorbed many Hindu ideas and practices to the point that attimes, the lines of distinction between the two religions (the parent and the offspring) were blurred. The objective of Nirvana towards which every Buddhist is supposed to strive is undoubtedly an adaptation of the Hindu concept of Moksha. The difference is that for the attainment of Moksha righteous behaviour and the conformation of duties as assigned by the caste into which a person has been bom is necessary, while for the attainment of Nirvana a person has to be free of all desires. But the essence of both concepts is the release from the cycle of re-birth. The daily of life of the Buddhist Bhikkus (missionary ascetics) was evidently Inspired by the concept and practice of Sanyasa which was the last phase of life a Hindu during which he was supposed to be free of all desires and to roam from place to place In search of spiritual enlightenment while spreading the gospel of righteousness among ithe people. The yellow coloured robes that the Buddhist Bhikkus donned were borrowed from the Saffron robes of the Hindu ascetic. Although as for the Buddhists the yellow colour was chosen to represent an autumn leaf which was once green but has inevitably turned yellow in conformation with the law that everything born has to decay and pass away.

Among the auxiliary Hindu practices which found their way into Buddhism, idol worship and the use of Sanskrit as the liturgical and scriptural language. The Budhhist conception of Buddha as a God and that in a later period after five thousand years when righteousness suffer an eclipse the Buddha will reappear on the earth. This Buddha who will be known as Maiterya will restore the rule of dhamma (law and religion). This idea implies belief in incarnations and re-incarnations on lines parallel to the Hindu concept of Kalki who, we are told, is to be the future incarnation of Lord Vishnu. But all said and done though

Buddhism precariously came close to Hinduism it maintained its distinct entity unlike the Jaina religion whose proximity to Hinduism nearly made it a part of Hinduism. In its appeal Buddhism was not, like its parent religion Hinduism, restricted to India and Indian but spread far and wide.

Thus in Buddhism, India gave birth to a major international religion, while the Hindus continued their way. Buddhism was the world's first missionary religion and won its triumphs through missionary activity. The ancient Buddhist monks who carried the Master's message of peace, love and universal brotherhood were pioneers in such a mission in Human history. Buddhism is the only trans-national religion which has never preached malice against other faiths, nor have its followers ever indulged in a holy war against those of another faith. Buddhism has won its way by persuasion and never by the sword, nor has it ever used its position of power to compel conformity to its precepts. And whatever its defects, it has unquestionably done much to benefits the human race by introducing and perpetuating a higher standard of conduct in life. One is inclined to bow before the Buddha, not in homage to a deity but in recognition to a superior craftsman in the art of living

Eightfold Path Of Buddhism

- Right view is the true understanding of the four noble truths.
- Right aspiration is the true desire to free oneself from attachment, ignorance, and hatefulness.
- Right speech involves abstaining from lying, gossiping, or hurtful talk.
- Right action involves abstaining from hurtful behaviours, such as killing, stealing, and careless sex.
- Right livelihood means making your living in such a way as to avoid dishonesty and hurting others, including animals.
- Right effort is a matter of exerting oneself in regards to the content of one's mind: Bad qualities should be abandoned and prevented from arising again; Good qualities should be enacted and nurtured.
- Right mindfulness is the focusing of one's attention on one's body, feelings, thoughts, and consciousness in such a way as to overcome craving, hatred, and ignorance.
- Right concentration is meditating in such a way as to progressively realize a true understanding of imperfection, impermanence, and non-separateness.

Buddhism:

In walking, just walk. In sitting, just sit. Above all, don't wobble.

Buddhism is a consciously directed journey on the path towards a rise above suffering. The achiever of this is called the Buddha — meaning 'the enlightened one'. It does not lay down the path. It suggests how to make the journey, what to look for, and assures that the journey indeed is a tough, demanding one. Buddhism is not a doctrine to which one can convert one's belief system and follow it unquestioningly. It is a truth to be realized by an

individual in his own way and not via any prescribed, 'swom-upon' method. Any rules, if at all, are meant to assist the people in earnestly striving for and attaining Buddhism.

There is no text endorsed by Gautama Buddha that lays down what Buddhism means, what it should mean, and what is the definite way to becoming a Buddha. Any knowledge related to this comes from the objective information (obviously difficult to get) about the life of Gautama Buddha and his recommendations to the people who expressed a desire to attain the knowledge that he had gained.

'Our life is shaped by our mind; we become what we think.' Dhammapada What makes Buddhism interesting and different from most other 'consolidated bodies of belief or faith', and religions, is that the path was discovered by a man as ordinary as any of us There Is nothing divine about him - he became divine by his actions and Buddhism assures It Is possible for everyone to attain the same divinity Gautama Buddha was a man who decided one day to seriously pursue the answers to the questions that deeply Intrigued him The main question that Gautama Buddha was on the search for was the cause and cessation of human suffering He'd seen it a part of every life. Everyone suffered In one way or the other, and for one reason or another Gautama Buddha was profoundly disturbed to see misery pervading human life and wanted to understand the reasons for humans' subjectivity by it and how to discontinue that.

He tried to find his answers by trying different methods of what he thought would lead him to them He became a pupil of well-known sages of his time, mastered different forms of meditation, and tried self-abjuration. He tried controlling his breath, holding it after inhaling till It felt the air would split his head, followed by reducing his diet to bare minimum that made his body extremely wasted When all these attempts caused nothing but extreme stress to his health, he realized that hurting one's body is no use in gaining knowledge of the life and the world here and beyond. He learnt that path to knowledge need not be a dismal and joyless one He thus, graduated from these methods.

Then he did what he incidentally had done once a few years ago as an adolescent one evening in his father's kingdom's crop fields - solitary peaceful simple meditation -- a comfortable feather-like dive into the depth of the mind. Gautama Buddha attempted to revisit this meditation again after all the tried and popular methods had failed. And this proved to be the right thing to do He successfully re-experienced the contentment and tranquility, reaching the depths of his consciousness. Thus, meditating for a long time, he consciously directed his mind to the questions he had set about to understand.

Eventually he did reach his answers. He succeeds in realizing that there is a cycle of suffering and there are causes for it. Realization of the main factors that characterized all human life and having found a way to master them, he felt an obvious freedom from the web of suffering that held its tentacles on human life. He could no longer be enslaved by it. He now well understood that to rise above the entrapment of suffering, is an ability that gives anyone an exalting feeling as you break free of the sense-desire influences, undergo a complete annihilation of the sense of ego-self, the cessation of self-consciousness, and a freedom of the soul. As he became the Buddha, he shared this with other seekers and

thence came Buddhism and the followers, rather seekers, of it. One is not a follower of Buddhism but a seeker of it.

The four truths that Gautama Buddha propounded are that: Suffering is universal; It is caused by desire. Suffering can be uprooted if desire is uprooted. That can be done by following the famous Eight Fold Path which includes: Right Understanding, Right Motives, Right Speech, Right Conduct, Right Livelihood, Right Effort, Right Mindfulness and Right Meditation.

This spans the intellectual, moral and contemplative, thus helping one to live a holistic good life. The life of Gautama Buddha is at the same time an example and the message of Buddhism. The consciousness, with which Gautama Buddha realized the answers to his questions, inspiring others to set on to the path, was a very self-directed act and this autonomy of *choosing* the path to one's *chosen* destination is important to Buddhism. It is one's own conscious act, one's own conscious intentions and one's own conscious actions that take one where one wants to reach. This democratic sense also pervades into its opinion of 'karma' (explain later as a part of 'dependent origination') -which incidentally is an Upanishad one. It is the individual who decides his actions and his life.

Buddhism is a path towards knowledge and living with the knowledge that life does not exist without suffering and one must rise above it to live successfully with it. One must break the shackles of the cycle of desire, temptation, temporariness, disappointment, because these lead to suffering It is as simple as it is difficult to realize. Buddhism requires active attentive realization of this It does not recognize second-hand experiences.

Chanting of prayers cannot take you there, nor can ritual self-mortification nor can trance-like passive perceptive mediation. You must walk the path yourself. And in this very sense and by allowing every Human the agency to define and carve out his own life. Budhhism is accessible to everyone who really wants it and thus is very democratic in nature.

Some accounts claim Gautama Buddha to have proscribed his followers from sex. Which I find difficult to believe for the obvious folly and impractically of its abandonment, and also if it were true I am afraid it wouldn't leave Buddhism as democratic as Gautama Buddha wanted it to be. Nor would this stand together with Gautama Buddha's support of.

Vast Emptiness nothing holy:

Buddhism does not see human beings as pre-formed, unchanging objective absolutes it sees a human being as a constantly developing individual is ever-moving in a constant journey, a wheel turning on its own and no grand being is doing it with some pre-determined plan. There is no divine being who is whole of his karma. Habitats, memories experience. An observing us from heavens. It is just us and our actions, and causes of those actions which lead to further actions-everything is a result of circumstances.

We do not need God to achieve salvation, peace and happiness. We can and must do it ourselves. This is one of the cardinal truths central to Buddhism and is popularly called 'dependent origination' (pratityasamutpada) all phenomena are constantly in an interdependent web of cause and effect. This interdependence can also be seen in Gautama Buddha's explanation of causes and conquering of suffering, and actions that can be

undertaken to affect nirvana. In the same sense, the 'shoonyata' concept of Buddhism is a result of dependent origination, wherein every thing's meaning is dependent on other things as well that cause it or are caused by it.

Buddhism is about a human being's moral and spiritual awakening. One has to recognize it on his own and practice positive actions and strengthen himself to rise above the victimization of the sense-desire trap.

Buddhism is to be experienced, not to be leamt from any text. Gautama Buddha never wanted it to be canonized. Hence, he never authorized any attempt to record his teachings or his life in a written form because he wanted his experience (and the same path for everybody else) to remain democratic, un-supernatural, very human, nothing divine. This freedom from the constraints of rules and systems is one of the mainstays of Buddhism.

Nirvana:

It literally means 'blowing out'. In Buddhism it means 'the blowing out of the ego-self.

Gautama Buddha is said to have explained the concept of a non-existent ego-self in this way: The T is an ever-shifting, changing consequence of the 'skandhas' that make up our mind-body complex -mind, feelings, perceptions, intentions, and consciousness. Their inter-relationship keeps changing, and not one of these forms the absolute ultimate 'self on its own. Hence, the T is transient and impenetrable. This is also referred to as 'shoonyata' where everything in itself is empty, and devoid of independent identity or existence. And this is Buddhism. Every meditation, every effort is towards this A person goes beyond existence and non-existence after nirvana. The Dhammapada says of It:

"He has completed his voyage, he has gone beyond sorrow. The fetters of life have fallen from him, and he lives in full freedom.[1] About Nirvana, Gautama Buddha is said to have said that it is, the unborn, the unageing, the unailing, deathless, sorrow less, undefiled supreme surcease of bondage.

Conclusion

Buddhism is very realistic because it refuses to worry about the unseen, the divine (the may be/the may not be) and only talks about the human life. It is truly personal in nature- Buddhism does not demand any external form of ritual to be exercised, and this helps maintain its essence. By its dependent origination concept, it suggest that good leads to good, thus encouraging responsible and well-intended actions. By giving the agency for his life to every human. It is most truly autonomous and very efficiently lays the foundations of allowing the human spirit to flourish and exercise itself.

References

1. Mahabodhi Temple Complex at Bodh Gaya: UNESCO world Heritage site.
2. Akira Hirakawa, Paul Groner, A History of Indian Buddhism: From Sakyamuni to early Mahayana. Reprint published by Motilal Banarsidass Publ., 1993.
3. Vincent Arthur Smith, The early history of India from 600 B.C. to the Muhammadan conquest including the invasion of Alexander the Great Clarendon Press, 1908.
4. Beyond Enlightenment Buddhism, Religion Modernity by Richard Cohen.

5. Curators of the Buddha by Donald S. Lopez University of Chicago Press pg. 7.
6. Beyond Enlightenment: Buddhism, Religion, Modernity by Richard Cohen, The new York times guide to essential knowledge: a desk reference for the curious mind. Macmilian 2007.
7. http://www.kheper.net/topics/Buddhism/Vjarayana.html
8. Vajrayogini: Her visualization, Rituals and Elizebeth English Wisdon Publications.
9. Buddhist Monks and Monasteries of India: their History and Contribution to Indian Culture by Dutt Sukumar.
10. The Maha- Bodhi by Maha Bodhi Society, Calcutta (page -8)

A Study of Relationship between Emotional Intelligence and Anxiety of Senior Secondary Students of Saharanpur District

Dr. Dharmendra Kumar
Associate Professor, Department of Teacher Education
J.V. Jain College, Saharanpur U.P.
&
Miss Reetika Garg
M.Ed. student
J.V. Jain College, Saharanpur U.P.

Abstract

Emotional Intelligence provides us the ability to deal effectively with the stress and anxiety at school. Anxiety is not a new term in the educational environment in modern times. Anxiety has adverse effects on the performance and level of mental health of students. At school, there were students of different social, cultural and economic strata, so the school environment has a different Impact on their level of affiliation and interaction. The purpose of this paper is to study the relationship between E.I. and anxiety of Senior Secondary students of Saharanpur district. Simple Random Sampling was exercised in the selection of a sample which comprised 100 students in which 50 boys and 50 girls of senior secondary school. Emotional Intelligence Inventory by Dr. S.K.Mangal and Mrs. Shubhra Mangal and Sinha's Comprehensive Anxiety Test by A.K.P. Sinha and L.N.K. Sinha were used as tools for the data collection. The collected data was analyzed by Pearson's product moment coefficient of correlation (r). The result revealed that there has been found a positive and low correlation between Emotional Intelligence & Anxiety. It was found that there is no significant relationship between Emotional Intelligence & Anxiety of Senior Secondary Students.

Key Words- Emotional Intelligence, Anxiety, Senior Secondary Students, and Relationship

Introduction:-

Education plays an important role in shaping an individual's career. The level of education helps people to earn recognition and respect in the society. Undoubtedly education is both socially & personally indispensable part of human life.Several factors have emerged as potential determinants ofschool learning out of the research done in the past. Intelligence is the only variable which appears to be definitely related with school learning.

Now the question arises to which extent do personality traits anxiety and emotional intelligence are related to each other. Hence this study concerns itself with the investigation as to how emotional intelligence and anxiety are related to each other. The present study is just an attempt in the direction to see if both of these factors i.e., emotional intelligence and anxiety are interrelated to each other. Before moving

further, the concept of emotional intelligence and anxiety is discussed in the following section.

Emotional Intelligence refers to the ability to identify andmanage one's own emotions, as well as the emotions of others.

Emotional intelligence is generally said to include a few skills:namely emotional awareness, or the ability to identify and nameone's own emotions; the ability to harness those emotions and apply them to tasks like thinking and problem solving; and the ability to manage emotions, which includes both regulating one's own emotions when necessary and helping others to do the same.

Emotional Intelligence can be categorized into five domains:

• Self Awareness - Observing your own and recognizing a feeling as it happens.

• Self-Management / Managing Emotions - Handling feelings sothat they are appropriate; realizing what is behind a feeling; findingways to handle fears and anxieties, anger and sadness.

• Motivation / Motivating Oneself - Challenging emotions in theservice of a goal; emotional self-control; delaying gratification andstifling impulses.

• Empathy - Sensitivity to others' feelings and concerns and takingtheir perspective; appreciating the differences in how people feelabout things.

• Social Skills / Handling relationships - Managing emotions inothers; social competence and social skills.

"Anxiety is an emotion characterized by feelings of tension, worried thoughts and physical changes like - increased blood pressure."

Anxiety, fear and worry seem to be permanent parts of the human condition. Anxiety has been of central concern in the study of individuals. Three decades ago, Freud wrote, *"The problem of anxiety is a nodal point, linking up all kind of most important questions, a riddle which the solution must cast a flood of light upon our whole mental life"*

Anxiety is a natural human reaction that involves mind andbody. It serves an important basic survival function.

Significance of The Study: -

The present study has been designed to study the relationship between emotional intelligence and anxiety of senior secondary students of Saharanpur District.

Emotional intelligence may be the best predictor of success in life. Emotionally intelligent people are more likely to succeed in everything they undertake in their lives.We can teach and improve in children and any individual somecrucial emotional competencies paving the way for increasing their emotional intelligence and thus making their lives healthier, more enjoyable and successful in the coming days. One's emotional intelligence helps him much in all the spheres of life through its various constituents or components namely knowledge of one's emotions(self-awareness), managing the

emotions, motivating oneself, recognizing emotions in others(empathy) and handling relationships.

Sometimes it happens that a person with high I.Q.may not beable to adjust in his environment due to lack of his emotions and presence of anxiety. As the desire to achieve high puts a lot of pressure on students which becomes tension and anxiety. We can say that the study is more useful and interesting toconsider how important it is for effective performance at work. Thestudy has provided sufficient support to teachers and parents in thefield of guidance and counselling services including physical and mental health programmes.

So, it is a matter of concern to studyof relationship between emotional intelligence and anxiety of senior secondary school students of Saharanpur district.

Statement of the Problem: -

"A Study of Relationship Between Emotional Intelligence and Anxiety of Senior Secondary School Students of Saharanpur District."

Objectives of the Study: -

1. To study the relationship between Emotional Intelligence andAnxiety of senior secondary boys students.
2. To study the relationship between Emotional Intelligence andAnxiety of senior secondary girls students.
3. To study the relationship between Emotional Intelligence andAnxiety of senior secondary students.

Hypotheses of the Study: -

1. There is no significant relationship between Emotional Intelligence andAnxiety of senior secondary boys students.
2. There is no significant relationship between Emotional Intelligence andAnxiety of senior secondary girls students.
3. There is no significant relationship between Emotional Intelligence andAnxiety of senior secondary students.

Delimitation of the Study: -

1. The present study has been confined to Senior Secondary students only.
2. The present study has been confined to Senior Secondary students of Saharanpur District.

Methodology: -

A Descriptive Survey Method was used in the study.

Sample: -

The sample consisted of 100 students only in which 50 are boys and 50 are girls.

Variables: -

Emotional Intelligence and Anxiety

Tools: -

1. Emotional Intelligence Inventory by Dr. S.K.Mangal and Mrs. Shubhra Mangal.
2. Sinha's Comprehensive Anxiety Test by A.K.P. Sinha and L.N.K. Sinha.

Statistical Technique: -

Pearson's Product moment Correlation Coefficient (r) method has been used in the study.

Conclusion of The Study: -

Table – 1

Calculation of Correlation Coefficient between Emotional Intelligence and Anxiety of senior secondaryboysstudents

Variables	N	Calculated 'r' value	Table 'r' value at 0.05 level	Table 'r' value at 0.01 level	Degree of freedom (N-2)
Emotional Intelligence & Anxiety	50	+0.11	0.273	0.354	48

Table-1 shows that the calculated value of correlation coefficient between emotional intelligence and anxiety of senior secondary boys students is +0.11 which shows a positive and weaker correlation between emotional intelligence and anxiety of senior secondary boys students exhibits between them. Since the calculated value of correlation coefficient **r**= 0.11 is less than the table value of 'r' at 0.05 level of significance i.e. 0.273. Hence the null hypothesis(H0) is accepted here which states that there is no significantrelationship between emotional intelligence and anxiety of senior secondary boys students. However there exist a weak relationship between emotional intelligence and anxiety of senior secondary boys students. Theverylowpositivevalueofcorrelationcoefficient'r'indicates that when E.I. increases then anxiety is also increased, butaffectedvery slowly.

Table – 2

Calculation of Correlation Coefficient between Emotional Intelligence and Anxiety of senior secondary girls students

Variables	N	Calculated 'r' value	Table 'r' value at 0.05 level	Table 'r' value at 0.01 level	Degree of freedom (N-2)
Emotional Intelligence & Anxiety	50	+0.21	0.273	0.354	48

Table–2shows that the calculated value of correlation coefficient between emotional intelligence and anxiety of senior secondary girls students is +0.21 which shows a positive

and weaker correlation between emotional intelligence and anxiety of senior secondarygirls students exhibits between them. Since the calculated value of correlation coefficient **r**= 0.21 is less than the table value of 'r' at 0.05 level of significance i.e. 0.273. Hence the null hypothesis(H0) is accepted here which states that there is no significant relationship between emotional intelligence and anxiety of senior secondary girls students. However there exist a weak relationship between emotional intelligence and anxiety of senior secondary girls students. The very low positive value of correlation coefficient'r'indicates that when E.I. increases then anxiety is also increased, butaffectedvery slowly.

Table – 3

Calculation of Correlation Coefficient between Emotional Intelligence and Anxiety of senior secondary students

Variables	N	Calculated 'r' value	Table 'r' value at 0.05 level	Table 'r' value at 0.01 level	Degree of freedom (N-2)
Emotional Intelligence & Anxiety	100	+0.16	0.195	0.254	98

Table-3 shows that the calculated value of correlation coefficient between emotional intelligence and anxiety of senior secondary students is +0.16 which shows a positive and weaker correlation between emotional intelligence and anxiety of senior secondary students exhibits between them. Since the calculated value of correlation coefficient **r**= 0.16 is less than the table value of 'r' at 0.05 level of significance i.e.0.195. Hence the null hypothesis (H0) is accepted here which states that there is no significant relationship between emotional intelligence and anxiety of senior secondary students. However there exist a weak relationship between emotional intelligence and anxiety of senior secondary students. The very low positive value of correlation coefficient 'r' indicates that when E.I. increases then anxiety is also increased, butaffectedvery slowly.

Educational Implications of the study: -

This study is helpful for students, teachers, school administrators and parents also. Students may be motivated and perceive that they are capable of doing something. They can be encouraged to rehearse reading-writing, enhance vocabulary skills, etc. Students

can be encouraged to build a habit of thinking beyond conventions. Teachers may help their students to control their anxiety level. Acknowledging students' ideas or thoughts and giving opportunities to express themselves may develop confidence among them, hence, facilitating their emotional intelligence. All the efforts on the part of parents may support a student by boosting his/her emotional intelligence and adjustment skills. Parents as well as society should try to release tension andlower the anxiety level among students for their better performance in their academics.

Reference:

- Aggarwal, Y. P. (2007). Statistics in Education; Delhi: Sterling Publications.
- Arnold, M.B. (1960). Emotion and Personality (2 vols.); New York: Columbia University Press.
- Ayodhya, P. (2007). Emotional Problems in secondary school children and its relation to life events and scholastic achievement, Journal of Community Guidance and Research. Vol. 24 No. 3, ISSN-0970-1346, p.347-355.
- Barnett, L.F.et al. (2000). Emotional Intelligence and life Adjustment
- Bhat (2017), 'Emotional Intelligence of Higher Secondary school students with respect to their gender', The International Journal of Indian Psychology, Vol.5, Issue.1, pp.37-48.
- Bhatnagar (2007) Reading in Methodology of Research in Education, Vinay Rakheja Publications, Meerut.
- Goleman 1998, Working with Emotional Intelligence, Bantam Books, New York, NY, USA.
- Gupta Heenu, 'Relationship between locus of control, Anxiety level of aspiration and academic achievement of secondary students' Indian Educational review, (1992) V.27, No 14., NCERT. P: 87.
- Ravinder; "The effect of static trait anxiety, psychological stress, intelligence on learning and academic achievement. Ph.D. Thesis in psychology, Punjab University.
- Spiel.Berger,D. Charles; Anxiety and Behavior, academic stress,New York & London (1966).
- Yadava (2014). Emotional intelligence, creativity and their impact on academic achievement of senior secondary class students

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 17, July-Dec. 2020 ISSN : 2249-7331

आंचलिक हिंदी उपन्यासों में लोक–विश्वास

डॉ० अर्चना धामा
ऐसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
डी०ए०वी० (पी०जी०)कॉलेज, मुजफ्फरनगर

शोध सारांश –

'मानव जीवन' में लोक–विश्वासों के स्थान का विश्लेषण करते हुए अनातोले फ्रांस ने कहा है –'राष्ट्र अपने लोक–विश्वासों पर जीवित रहते हैं, अपनी लोक गाथाओं से वे जीवन के लिए आवश्यक विचार ग्रहण करते हैं।उन्हें अधिक की आवश्यकता नहीं होती, थोड़ी सी उपदेशात्मक कथाएं ही लाखों प्राणों को प्रेरणा देने के लिए यथेष्ट होती हैं'।लोक–विश्वास और दंत–कथाओं में दृश्य और अदृश्यजगत के प्रति जनसाधारण का दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित होता है। उसकी नींव पर ही समाज के आचार–विचार आश्रित होते हैं।इन लोक–विश्वासों में लोक–जीवन की भौतिक एवम धार्मिक चेतना का मूल स्रोत निहित रहता है। अंततः ये मानव समुदायों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं जीवन–मूल्यों को निर्धारित कर लोक–जीवन को स्थिरता और स्थायित्व देते हैं। इस शोध में आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से विभिन्न जनजातियों और समाजों के लोक–विश्वासों को समझने का प्रयास किया गया जो इनके जीवन का आधार स्तम्भ है।

कुंजी शब्द : दंतकथा, गोदना, बोंगा, मेजी, पूर्वग।

परिचय –

विगत और मृत अतीत की वस्तु न होकर, लोक–विश्वास जीवित वर्तमान की वस्तु है। वे संस्कृति के असम्बद्ध अंगों में सम्बद्धता उत्पन्न कर उसे सशक्त बनाते हैं। मानव के विचारों और व्यवहारों पर उनका अप्रत्यक्ष किंतु व्यापक एवं सशक्त शासन पूर्वग समाजों में सरलतापूर्वक देखा जा सकता है। सांस्कृतिक विकास के आद्य स्तर पर जीवन–यापन करने वाले अनेक आदिवासी समाजों की दृष्टि में पौराणिक कथाएं तथा लोक विश्वास मानव के कल्पनाशील मस्तिष्क की वैचित्र्यपूर्ण स्वप्न दृष्टि न होकर उनके यथार्थ जीवन के अनिवार्य अंग होते हैं।वे उन्हें सामान्य लोक–कथाओं से भिन्न सुदूर सुंदर अतीत की वास्तविकघटना मानते हैं, जिनका प्रभाव मानव के जीवन पर युग–युग से पड़ता आ रहा है। संकट की अनिश्चित घड़ियों में मानव किसी आधार की खोज करता है, उसके परंपरागत लोक–विश्वास उसे युगों से मानसिक दृढ़ता देते आए हैं।

लोक–विश्वास के क्षेत्र को अत्यधिक सीमित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। अनेक लोक–विश्वासों का मानव मस्तिष्क पर गहरा और वास्तविक प्रभाव रहता है और उन्हें ध्रुव सत्य मानकर समुदाय अपनी जीवन नीति निश्चित करते हैं। अनेक लोक–विश्वास धार्मिक क्रियाओं से प्रत्यक्ष रुप से संबंधित रहते हैं। कुछ का उद्देश्य केवल मनोरंजन होता है, कुछ का लोक मस्तिष्क की दृष्टि और उसके भिन्न अंगों का स्पष्टीकरण। अनेक लोक विश्वास ऐसे होते हैं जिन्हें पूर्णतः आदि मस्तिष्क की साहसपूर्ण कल्पना मात्र ही माना जा सकता है।

वर्गीकरण –

लोक विश्वासों का वर्गीकरण इनकी अनेकता और विविधता के कारण कठिन होता है। लोक विश्वासों की कोटि में पौराणिक व अलंकृत रूप लिए साहित्य या काव्यस्तर की ब्रहमांड के चल–अचल मार्गों की उत्पत्ति की वृहत् गाथा तथा प्रत्यक्ष व सरल रूपवाली साहित्यिकता और काव्य

चमत्कार रहित किसी सामान्य अंधविश्वास के मूल को स्पष्ट करने वाली अति संक्षिप्त कथा भी आती है। शैली की दृष्टि से भी इसमें अनेक भेद मिलते हैं। अनेक लोक विश्वासों को अपने भीतर समेटे कतिपय गाथायेंऐसी भी होती हैं जिन्हें सुनाने में कई–कई सप्ताह माह लग जाते हैं और जिनमें मूल कथा के अतिरिक्त गायन, नृत्य, नाट्य, संवाद एवं धार्मिक क्रियाओं का समावेश भी रहता है।

अभिप्राय के आधार पर लोक–विश्वासों को चार प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।–

(1) मानव तथा विश्व की उत्पत्ति से संबंधित लोक–विश्वास।
(2) प्राकृतिक जगत् से संबंधित लोक–विश्वास।
(3) मानव शरीर तथा जीवन से संबंधित लोक–विश्वास।
(4) मानवीय संस्थाओं से संबंधित लोक–विश्वास।

आंचलिक उपन्यासों में लोक–विश्वास –

लोक–विश्वास का क्षेत्र बहुत व्यापक है। आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से विभिन्न अंचलो में प्रचलित लोक–विश्वासों को भली प्रकार समझा जा सकता है।

'जंगल के फूल'मेंमुड़िया गोंडों की एक लोक मान्यता यह है कि जब पीहू आकाश में पिऊ पिऊपिऊ चिल्लाती है तो यह अपने प्रेमी को पुकारा करती है। पुलिस उसके प्रेमी को पकड़कर जेल ले गई थी और वह वही मर गया था। वह उसी के वियोग में दिन–रात चिल्लाती रहती है।

खुले आकाश में टिटहरी का टिट्ट् टिरी टिट्ट् टिरी – करते चक्कर काटती है और पपीहा लगातार 'पीऊपीऊ पीऊ' करता है, लाल चीटियांमुंह में अंडे दबायेभागती है और चिड़िया धूल में लोट–लोटकर नहाती है तो वर्षा होना निश्चित माना जाता है। इन सब चिह्नों को ये लोग पानी बरसने के चिह्न मानते हैं।

गोंड कन्याएं अपने शरीर पर गोदने गुदवाती हैं। इससे उनकी सुंदरता में चार चांद लगते हैं और इसी से अच्छे–से–अच्छा प्रीतम मिलता है। साथ–ही–साथ यह भी माना जाता है कि यह गोदने मृत्यु के बाद नरक की यातना से बचाते हैं और तब देवता छाती में भाला नहीं घुसाते हैं।

निःसंतान स्त्रियां कंकाली की पूजा करती हैं। देवी–देवता मनाती हैं। जब देव प्रसन्न नहीं होते तो भूत–प्रेतों का सहारा लेती हैं। आधी रात को नग्नावस्था में पीपल के नीचे जाकर दीप जलाकर प्रेत आवाहित करती हैं। यह कहा जाता है कि –वहां से लौटकर कभी कोई स्त्री बांझ नहीं रह पाई।देवता जहाँ हाथ टेक दे, वहाँ भूत सहारा देते हैं।

अंडे की पंगुरिया को भूत–प्रेत, चुडैल से रक्षा करने वाला माना जाता है।

गोंडलोगों का विश्वास है कि धरती लिंगों ने बनाई है और लिंगोंने ही इन लोगों को भी बनाया है।

नारायण देव इनके गांव की रक्षा भूत–प्रेतों और चुडैलों से करता है। बरिया पेन इनके गांव पर गाजगिरने से बचाता है।

इन लोगों में नृत्य करते समय यदि वेश–भूषा में सजे पंखों में से कोई पंख नीचे गिर जाए तो उसे अशुभ समझा जाता है।

दिवाली नाचने वालों का गेवड़ा पार करने के बाद पीछे मुड़कर नहीं देखता, क्योंकि पीछे लौट देखना अशुभ सूचक है।

विवाह में पानी भरे हुये मिट्टी के बर्तन में चावल के दो दाने चक्कर काटते हुये आपस में मिल जाए तो ऐसा माना जाता है कि विवाह सफल होगा।

इनकी एक मान्यता यह है कि स्वप्न देखने के पश्चात सोना नहीं चाहिए और ना ही उस स्वप्न की चर्चा किसी से करनी चाहिए क्योंकि इससे स्वप्न का फल नहीं मिलता।

'सूरज किरण की छांव' में गोंड लोगघुंघराले बालों वाली गोडिन को बहुत भाग्यवान मानते हैं।

जंगल को यह लोग अपना धन मानते हैं। हर झाड़ को प्रेमी माना जाता है। जो झाड़ अधिक फल देता है वह स्त्री माना जाता है तथा जो फल नहीं देता, उसे पुरुष समझा जाता है। इनका विश्वास है कि यह झाड़ भी इनके समान जीवन बिताते हैं। आपस में बातचीत करते हैं,गाना गाते हैं, इतना ही नहीं, जब कभी वे मगन हो जाते हैं तो सब खूब नाचते हैं।

हरझाड़ में देव, हर पत्थर को भगवान मानते हैं और पूजा करते हैं। बड़ा महादेव को ये सबसे बड़ा भगवान मानते हैं।

'शाल वनों का द्वीप' में ओरक्का गांव में जब लोग शीतला माता के प्रकोप से ग्रस्त होते हैं, हाहाकार फैलता है तो सारा गांव देवान की शरण में जाता है।'पेन लस्किताल' समारोह होता है। देवता गंभीर परिस्थिति देखकर शीतला माता का प्रकोप शांत होने तक लोगों को मांस भक्षण निषेध की आज्ञा देता है। इसके आदेश का पालन लोग करते हैं और देवी शांत होने पर दूसरा पेन लस्किताल आयोजित होता है। ग्रामवासी मिलकर माता बिदा का आयोजन करते हैं जिससे यह लोग माता को बलि चढ़ाते हैं।

शेर के उत्पात से भयभीत लोग 'आपत्तिकालीन पेन लस्तिकाल' आयोजित करते हैं।'देवान' के पवित्र रावल में एकत्रित होकर यह लोग प्रार्थना करते हैं। हर घर का मुखिया पूर्ण आस्था और श्रद्धा से देवता के चरणों में समर्पित होता है। प्रार्थना की जाती है –हे देवाधिदेव जंगल ही हमारा जीवन है। तेरे ही आश्रय पर हम लोग अकेले–दुकेले, दूर–दूर तक निकल जाते हैं। पर कभी कुछ नहीं होता। तेरे सम्मान में हम लोग किसी प्रकार की कोई कमी नहीं करते। लेकिन इसके बावजूद यदि तू रुष्ट है तो जरूर कोई कारण होना चाहिए। हम अभागों से ऐसी क्या भूल हो गई कि दिन दहाड़े गांव में आदमखोर बाघ घुस आया है।

'वन के मन में' में 'हो' समाज में बोंगा भूत या देवता दोनों को ही समझा जाता है। लुकना के असाधारण परिश्रम को देखकर लोग पहले तो उस पर भूत का प्रकोप समझते हैं किंतु बाद में विश्लेषण करने वाले लोग लुकना के मुखड़े पर असाधारण गौरव तथा नेत्रों में आत्मबल की ज्योति देखकर विश्वास करते हैं कि लुकना के सौभाग्य से उस पर देवता की अनुकंपा हुई थी। देवता ने ही उससे तप कराया और अब आदमी के बहुत ऊंचे स्तर पर पहुंचा दिया है। कोई–कोई बड़े बूढ़े तो उसे देवता ही मानकर छिपकर प्रणाम करते हैं।

विवाह में वर पक्ष और वधु पक्ष 'एरेउ' का विचार करते हैं। वधू दल के लोग सविस्तार वर्णन करते हैं कि उन्होंने रास्ते में क्या–क्या देखा। जो कुछ रास्ते में देखा सुना जाता है, उसे ही भविष्य का चिह्न समझा जाता है और उसी के ऊपर फैसला होता है कि परमात्मा को कार्य सिद्ध होना मंजूर है अथवा नहीं। कुछ प्रमुख लक्षण इस प्रकार माने जाते हैं–

(1) चील मुर्गी के चेंगना को उठा ले गई या नहीं? यदि ले गई तो सामने से या दायें से या बायें से? इसका अर्थ यह समझा जाता है कि सब कुछ तय हो जाने के बाद ब्याह के पहले ही कोई दूसरा युवक लड़की को उठा ले जाएगा। घटना सामने हुई तब तो निश्चय है कि ऐसा ही होगा और कोई उसका कोई काट नहीं, यदि दायें हुई तो निश्चय होते हुए भी उसका उपचार है, बायें ओर होने पर संदेह होता है कि ऐसा होगा अथवा नहीं।

(2) कौवा पेड़ पर कहां बैठकर कांव–कांव कर रहा था –सामने, दाएं या बाएं? अर्थात ब्याहयदि होगा तो बीमारी फैलेगी, सामने, दाएं और बाएं की निश्चयता कीश्रेणी उसी प्रकार होती है।

(3) नदी पार करते समय सांप दिखाई दिया या नहीं और हां, तो किस ओर? अर्थात् लड़की कृ पण होगी और लड़का उसके वश में रहेगा।

(4) कुत्ते ने जमीन खोदी। अर्थात् यदि खोदी तो किसी पक्ष का कोई मर जाएगा, विशेषकर जन्म होते ही बच्चा।

(5) बिना आंधी के पेड़ की डाल टूटी या नहीं? अर्थात किसी पक्ष में मृत्यु होगी।

(6) घोड़ा लौटता हुआ मिला। अर्थ है कि मिर्गी की बीमारी होगी।

(7) दो गीदड़ आपस में लड़ते हुए मिले तो इसका अर्थ है कि मृत्यु होगी।

(8) सांप बेंग को पकड़े हुए मिले तो इसका अर्थ है कि डियागमें कोई विष डाल देगा।

(9) गाय–बैल सामने लड़े तो इसका अर्थ यह माना जाता है कि ब्याह के समय झगड़ा होगा।

अच्छा या बुरा जो लक्षण पड़ता है, उस हर एक के लिए एक–एक मेरोमी अलग रखा जाता है, अच्छे शगुन का एक ओर, बुरे का दूसरी ओर। अंत में अच्छे–बुरे का जोड़–घटाव करने और एक दूसरे के काट का मिनहा देने के बाद ब्याह का शगुन निकाला जाता है। बाद में जो एक दो अपशगुन निकलता है उसकी शांति विधिवत की जाती है।

डियांग को सिमबोंगा की देन समझा जाता है। इसे देवता का प्रसाद मानते हैं और यही माघे परब का चढ़ावा होता है।

'चौथी मुट्ठी' में लोग गोल देवता को परमेश्वर तथा नारायण मानते हैं जो सबके साथ न्याय करते हैं। गोल देवता के दरबार में अपने दुश्मनों के सत्यानाश के लिए घात डालने के लिए एक काला बोकिया (बकरा) मारना बहुत आवश्यक होता है।

इनका विश्वास है कि नारायण गोल देवता के दरबार से कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटता।

इन लोगों की मान्यता है कि देवता और दीपक की सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती। देवता और दीपक की सेवा–चाकरी का चमत्कार तत्काल फलदायक होता है। निःसंतान पारबती लालन जब जागेश्वर के मंदिर में रात भर 'खड़ा दीपक' लेकर लौटती है तो उसे अगले ही साल पुत्र की प्राप्ति होती है।

शनिवार का दिन देवता के मंदिर में जाने के लिए जितना शुभ माना जाता है, किसी आदमी के घर जाने के लिए उतना ही अशुभ और अनिष्टकारी भी। उस व्यक्ति के चले जाने के बाद सात बार थू–थू करके घर की देहली पर बांया पांव पटकते हैं।

यहाँ हॉट पट्टी में कलिका मैया की रखवाली चलती है। इसे दैत्य वंश मर्दिनी मैया भी कहते हैं। यह पापों कादण्ड देती हैं। सबका दुःख देखती हैं।

'ब्रह्मपुत्र' में कथा के अनुसार ब्रह्मपुत्र कभी–कभी राक्षसों की बातों में आकर बरबादी फैलाता है और महाबली भगवान की संतान से बदला लेता है। यहां के लोग ब्रह्मपुत्र के क्रोध को शांत करने के लिए ब्रह्मपुत्र पर नारियल चढ़ाते हैं, अनेक बार दूध की मटकियाँ भर–भर कर ब्रह्मपुत्र को भेंट करते हैं।

जब घर में पुत्र जन्म लेता है तब लोग ब्रह्मपुत्र पर नारियल चढ़ाते हैं। यहां भूकंप के झटके आते हैं उन्हें कम करने और बंद करने के लिए अनुष्ठान कराया जाता है जिससे भूकंप शांत हो जाता है।

स्त्रियों का यह विश्वास है कि जलदेवता का व्रत रखने से सदा शुभ फल मिलता है।पाँच वर्ष तक लगातार जलदेवता का व्रत रखने से ही नीरद की मां को नीरद प्राप्त हुआ।

माघ बिहू की मेजी की आग को तापना बहुत ही शुभ माना जाता है। यह असमिया लोगों का पर्व है। नेपाली भी मेजी को शुभ मानते हैं। मुसलमान इसे दूर से ही देखते हैं।

यहां के लोगों का यह विश्वास है कि वसंत पंचमी अष्टमी के दिन ब्रह्मपुत्र में स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं।

यहां के मीरी लोगों का मानना है कि जब बहुत–सी फाख्तायें घर पर आ बैठती हैं तो उनके पूर्वजों की आत्मा को कष्ट है। अतः फाख्ताओं को चावल खिलाए जाते हैं ताकि पूर्वजों का कष्ट दूर हो।

ब्रह्मपुत्र की जन्म कथा यहां के बड़े बूढ़े सुनाते हैं। एक कथा के अनुसार ब्रह्मपुत्र नदी हाथी के मुख से निकलती है। सतलुज घोड़े के मुख से निकलता है। सिंधु नदी बाघ के मुख से निकलती है। एक चौथी नदी का उद्‌गम मयूर के मुख से माना जाता है।

यहां वर्ष में दो बार दूबर पूजा की जाती है। सभी लोग अपने घड़े कुछ इस प्रकार तोड़े कि सब नदियों में बाढ़ आ जाए।इन्द्र के प्रकोप से ऐसा तूफान आ सकता है कि झोपड़ियों की छतें उड़ जाएं, असंख्य पेड़ उखड़ कर गिर जाएं, सड़क पर चलते हुए लोग उड़कर दूर जा गिरे और यह भी पता ना चले कि उनके शरीर में कितनी बोटियां थी।

'कब तक पुकारूं' में नटों का विश्वास है कि जादू टोने से किसी व्यक्ति (चाहे दुश्मन भी हो) की जान लेने वाला व्यक्ति अगले जन्म में सूअर बनता है।

पुराने जमाने में जब बंजारों के पास इतना धन हो जाता था कि वे ले जा नहीं पाते थे, तो अपने बच्चे को धरती में धन के साथ गाड़ कर उस पर आटे का साँप बनाकर रख जाते थे। वह साँप उस धन की रक्षा करता था। ऐसा विश्वास है।

'हिरना साँवरी' में मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ के करतरा गांव से लगभग 2 मील दूर बाबा सिद्धनाथ का मंदिर है। सिद्धनाथ बाबा की हर मान्यता फल देती है। किंतु गांव के लोग मानते हैं कि जब से इस मंदिर में नया पुजारी आया है, जो कि आलसी व लंपट है, तब से बाबा की हर मानता 'फोक' जा रही है।

हवेली की बड़ी बहू के एक भी संतान नहीं थी। उसने भी बाबा सिद्धनाथ की मानता कर रखी थी कि संतान होने पर वह हर साल गांव की रामलीला का पूरा खर्च देगी। किंतु नये पुजारी के आने से बाबा सिद्धनाथ का सत् चला गया था। सिद्धनाथ बाबा किसी और मंदिर को जा चुके थे।

विवाह के 5 साल बाद भी जब हिरना के दाई–ददा (माता–पिता) को संतान नहीं होती तो बाबा सिद्धनाथ के मंदिर में वह हर शनिवार को जाने लगे और कटोरी में गेहूं, बाजरे या चने का आटा लेकर रास्ते में पड़ने वाले चीटियों के बिल पर छिड़कते थे। बाबा की कृपा से हिरना पैदा हुई।

चीटियों को गेहूं, बाजरे या चने का आटा खिलाना बड़े पुण्य का काम समझा जाता है।

यहां के लोगों का विश्वास है की मानता जिस रूप में या जिस प्रकार मानी जाती है उसे उसी रूप में, उसी प्रकार पूरा करना चाहिए अन्यथा उस व्यक्ति पर मुसीबतों का पहाड़ टूट सकता है।

यहां के लोगों का गोदने गुदवाने के बारे में यह विश्वास है कि मरने के बाद सब चीजें तो यहीं धरी रह जाती हैं, लेकिन गोदने सुरग (स्वर्ग) तक आत्मा का साथ देते हैं। जिसके पास जितने ज्यादा गोदने होते हैं, उसे उतना ही धर्मात्मा समझा जाता है।

दानीपुर में सीवनाथ की चट्टान के बारे में कहा जाता है कि दो प्रेमी थे जो विवाह न होने के कारण आत्महत्या कर लेते हैं और कबूतरों के रूप में बादलों के पार मिलते हैं। तब से ही दो कबूतर इस चट्टान पर आते हैं। दुनिया के सारे कबूतर रात को सो जाते हैं,वो नहीं सोते –वही दो कबूतर। बल्कि वे तो सोते ही नहीं –दिन–रात जागते हैं, प्यार करते हैं। हर आधी रात दोनों यहां आते हैं, इस चट्टान पर बैठते हैं, प्यार करते हैं ..... गुटरूं गू ..... गुटरूं गू ..... वह दिखाई नहीं पड़ते,बस उनकी मस्त आवाज आती है, बिल्कुल साफ,बहरा भी सुन ले।तबसे यह चट्टान पीर का पत्थर हो गई।

'मैला आँचल' में मेरीगंज गांव के लोग जिन पीर पर विश्वास करते हैं कि यह पीर कभी–कभी मनमोहक रूप धारण कर, कुमारी और बेवा लड़कियों को भरमाता है। चुटकी बजाते ही गरीब को धनी कर देता है। जिस पर क्रोध होता है, उसे बर्बाद कर देता है और जिस पर प्रसन्न होता है, उसे निहाल कर देता है। जिन पीर से गांव की रक्षा की प्रार्थना की जाती है। मान्यता पूरी होने पर उसे सिरनी और बद्धी चढ़ाते हैं।

जिस पेड़ को पीर समझकर चीथड़ा चढ़ाते हैं उसे चेथरिया पीर कहा जाता है। मन में आशा और विश्वास रखकर पेड़ पर, चीथड़ा बांधा जाता है।

अपनी मन्नत मनवाने के लिए काली माई को पाठा, विषहरी माई को एक जोड़ा कबूतर और दूध लावा कबूला जाता है।

गांव की रक्षा के लिए जगदंबा की पूजा की जाती है।

खलासी जी गांव में बुरे दिनों का कारण बनर भुत्ता मानते हैं क्योंकि बंदर के मर जाने पर उसकी आत्मा प्रेत बनकर सारे गांव को सता रही है।

गांव में कमला मैया के महातम की तरह–तरह की कहानियां कहीं जाती हैं। कमला मैया गांव में किसी के भी घर में भोज के लिए चांदी के बर्तन देती थी जिन्हें बाद में लोग मैया को वापस कर देते थे। किंतु एक बार किसी गृहपति ने उनमें से कुछ बर्तन चुरा लिए तो मैया ने बर्तनदान बंद कर दिया और उस गृहपति का वंश तो समाप्त ही हो गया।

'सोना माटी' में करइल क्षेत्र के लोग चतुर्दशी का निर्जला व्रत रखते हैं। व्रत रखने से पुण्य प्राप्त होता है। शिवरात्रि का निर्जला व्रत करने और जल, बेलपत्र भोले बाबा को चढ़ाने से अवश्य ही मार्ग मिलता है, शुभ फल प्राप्त होता है।

स्त्रियां तीज का व्रत रखती हैं। इस व्रत में पानी तक नहीं पीते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस व्रत में पानी पीने वाली स्त्रियां अगले जन्म में मछली बनती हैं और अनाज खाने वाली स्त्री सूअरी, दूध पीने वाली स्त्री नागिन और मीठा खाने वाली स्त्री चींटी बनती है। एकदम निखण्ड व्रत का ही महातम माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि कैलाश पर्वत पर शिव जी ने पार्वती जी से इस गुप्त व्रत की कथा कही थी।

यहाँ एक किवदंती यह है कि यहां के भगवती मंदिर में जिस संकल्प के साथ हवन–पूजन होता है और कीर्तन होता है, वह संकल्प अवश्य पूरा होता है।

गांव में भी जब आंख की बीमारी जयबंगला फैलती है तो कहा जाता है कि एक मेंढक ने एक पेड़ पर बैठकर आदमी की बोली में कहा है कि मैं आँख का रोग लेकर आया हूं और मेरा भाई हैजा लेकर आ रहा है।

इस बीमारी से रक्षा करने का उपाय एक स्त्री के स्वप्न में आकर गंगा जी बताती हैं कि अपने भाई के घर की चुनरी चढ़ाने से भाई का कल्याण होगा। उस औरत ने नैहर जाकर माई से कहा तो उसने 'पाखंड' कह कर उसे खाली हाथ वापस कर दिया है। दूसरे दिन भाई अचानक मर गया और फिर गंगा जी ने उस औरत को स्वप्न में बताया कि उसका कफन आधा फाड़कर ओढ़ लो तो वह जी जाएगा ..... धन्य हो गंगा जी मरे को जिला दिया।

इसलिए सभी औरतें अपने–अपने भाई से चुनरी लेकर पिठार के साथ गंगा जी को चढ़ाती हैं।

विवाह में वर और कन्या को 'कोहरथ का भात' प्रसाद के रुप में लेते हैं। इस कोहरथके भात का वर्णन यहां की अनेक लोक कथाओं में आता है। एक कथा में राजकुमार दूल्हा विवाह के ठीक वक्त नहीं पहुंचता है तो बारात में किसी तरह पहुंचे एक सामान्य सुंदर युवक से राजकुमार की शादी हो जाती है। गौना करने जब नकली वर यानी राजकुमार पहुंचा तो कन्या ने प्रश्न किया, बताएं विवाह की रात 'कोहरथ का भात' कैसे पका?दुल्हा चुप रहता है। फिर शोर हो जाता है। राजकुमारी को असली वर की प्रतीक्षा है जो इस भात पकने के रहस्य को जानता है।

जब गोरैया पैरों से मिट्टी खखोर–खखोर कर और फरफराई पंखों से उसे छींट कर लौटती है तो इसे वर्षा होने का लक्षण माना जाता है।

रोहिणी नक्षत्र में खेतों में बीज बोने से बहुत अच्छी फसल होती है चाहे कितना ही सूखा पड़ा है।

'आधा गांव' में शीआ मुसलमानों का विश्वास है कि इमाम हुसैन मोहर्रम के दिनों में हिन्दुस्तान आ जाते हैं और दसवीं की बैठक के पश्चात् कर्बला वापस लौट जाते हैं।

मोहर्रम के दिनों में कोई खुशी का काम करना और हँसना भी प्रतिबंधित होता है। क्योंकि ऐसा करने वालों पर खुदा की फटकार पड़ती है।

गांव में जब बाढ़ आती है तो मुसलमान अजान देने लगते हैं और हिंदू गंगा पर चढ़ावे चढ़ाने लगते हैं कि रूठी हुई गंगा मैया मान जाए।

यहां कहा जाता है कि दिन में कहानी सुनाने से मामा रास्ता भूल जाते हैं।

जुआ खेलते हुए फुन्नन मियां शगुन के लिए लक्ष्मी की मूर्ति के नीचे बैठते हैं।

किसी सुंदर व्यक्ति को अपनी नजर से बचाने के लिए तुरंत अपनी एड़ी देखते हैं।

निष्कर्ष –

अंततः कहा जा सकता है कि लोक–विश्वासों का संस्कृति के एकीकरण मेंबहुत योगदान होता है। लोक–विश्वास निहित कथाएं समाजीकरण और समाज–नियंत्रण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करती हैं। अतीत की परंपरा को वर्तमान तक लाना और उसे भविष्य तक विस्तारित करना उनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है। लोक–विश्वासों से संस्कृतियों के जीवन–दर्शन और मानव के मानव, प्रकृति और अदृश्य जगत के अंतः संबंधों की रूपरेखा मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ :–

(1) मानव और संस्कृति – श्यामाचरण दुबे, राजकमल प्रकाशन दिल्ली

(2) लोक जीवन और साहित्य – डा० रामविलास शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
(3) सांस्कृतिक मानवशास्त्र –लेखक मैलविल जे० हर्सकोवित्स, अनुवादक – रघुराज गुप्त, भारती भवन देहरादून
(4) जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी पृ० 131,137
(5) सूरज किरण की छाँव – राजेंद्र अवस्थी
(6) शाल वनों का द्वीप– शानी पृ० 121
(7) वन के मन में – योगेंद्र नाथ सिन्हा
(8) चौथी मुट्ठी – शैलेश मटियानी
(9) ब्रह्मपुत्र – देवेंद्र सत्यार्थी
(10) कब तक पुकारूँ– रांगेय राघव
(11) हिरना साँवरी – मनहर चौहान पृ० 70
(12) मैला आँचल – फणीश्वरनाथ रेणु
(13) सोना–माटी – विवेकी राय
(14) आधा गाँव – राही मासूम रज़ा पृ० 108

Impact of Changing Scenario of Society on Child Development: Axiological Aspect of Teacher Education

Dr. Sangeeta Srivastava
Associate Professor, Teacher Education Department
D.A.V. (P.G.) College, Muzaffarnagar (U.P.)

Abstract

Modern Indian society is introduced with an element of openness in society. Urbanization, literacy and industrialization are some factors responsible for enhancing modernization rate. This social change is not being experience in outer appearance only but also in the inner core called values. The values of ancient Indian society namely Artha, Kama, Dharma and Moksha determined our attitude of life and guided our conduct which included both aspects of life called material or utilitarian (Artha and Kam) as well as spiritual (Dharma and Moksha). In the middle age our society came in the grip of superstition, blind faith, fatalism, faith in future, stratification in society on the basis of caste, irrational attitude etc. The modern air of science had a hammer attack on this vicious circle which was prohibiting the society from development, resulting in modernization of society with a western effect and we could get rid of these unhealthy traditions up to some extent and became aware about human rights. But during this entire path we could not go back to our original values. This is the real picture of our modern society which is far from original Indian ideology. Society itself is not appearing to have a clear vision about its appearance it has a dilemma between glorious past and westernization in our society. No doubt change is the law of nature, but this change is sweeping out our society towards west. The painful picture of present scenario is that we failed to fully absorb the values of science and are still guided in our conduct by superstition, tradition, dogmas etc. Our aims and objectives of education are still not rational. They fail to clarify what type of child development may be called holistic in the context of our modern Indian society. Here is the need of such teachers who can open flood gate of new hopes, new vision and new future for our children through holistic education and make their contribution commensurate with the intelligence, ability and capacity of children in the renaissance of our country. It is essential for a teacher to have a clear vision of axiological aspect of the ideology that the society expects to be followed by the next generation. There is a conflict between ancient and modern, such a situation cannot be able to give direction to the teachers of our new generation. It is an urgent and most needy area for educationists to make axiological aspects of teacher education crystal clear so that our society can make itself out of any dilemma. Teachers are important force for such development. We cannot ignore this building block of society; especially their role as a mentor. If a building block

is healthy, mentally and spiritually the whole society will automatically be healthy and would be capable to think how to reconstruct its structure with recombining utilitarian and spiritual values, giving a new hope to young generation.

Key-Words: Changing Scenario, Social Changes, Child-Development, Westernization, Axiological-Aspect, Teacher-Education.

Modern Indian society is introduced with an element of openness in society. We can experience the upward mobility of society and differences of ideas within the same generation called intra generation. Urbanization, literacy and industrialization are some factors responsible for enhancing modernization rate. This social change is not being experience in outer appearance only but also in the inner core called values. The values of ancient Indian society namely Artha, Kama, Dharma and Moksha determined our attitude of life and guided our conduct which included both aspects of life called material or utilitarian (Artha and Kama) as well as spiritual (Dharma and Moksha). In the middle age our society came in the grip of superstition, blind faith, fatalism, faith in future, stratification in society on the basis of caste, irrational attitude etc. The modern air of science had a hammer attack on this vicious circle which was prohibiting the society from development, resulting in modernization of society and with a western effect we could get rid of these unhealthy traditions up to some extent and became aware about human rights but during all entire path we could not go back to our original values. It is essential for a teacher to have a clear vision of axiological aspect of the ideology that the society expects to be followed by the next generation. It is important to know that this is axiology which decides our way of life, our conduct and our conscience.

Significance of the Study: It is the high time of global reforms causing a sudden change in social scenario through out the world. On one hand the wind blowing for individual freedom is at its peak, on the other hand human values are continuously deteriorating. United Nations is also advocating for the development of universal human values. The axiology is that branch of philosophy which may direct any one towards a perfect life style with good conduct and conscience. The right time for such development is the child-hood age whose emotional aspect of brain development is mostly affected by the conduct of a teacher. Therefore, it is the need of the hour to find out those workable axiological perspectives of teacher education which may work with glory of past in emerging Indian society. The proposed study titled as “Impact of Changing Scenario of Society on Child Development: Axiological Aspect of Teacher Education”, is most significant study in this era of social change.

Research Methodology: The present research paper is an analytical thematic piece of qualitative research work based on secondary data as well as observations of prevailing practices in the society.

Analysis and Interpretation: For the purpose of analysis and interpretation of the study it is essential to analyze the prevailing practices of child development and teacher education separately followed by the analysis of need of new axiology for teacher education.

Present scenario of society:

- **Child Development**

The causes which made us free from superstition were not our own but were blowing from western society which could not reach to Indian spirituality up to now, this is the cause which make us far from our banks and brought us between the oceans of materiality. This is the real picture of our modern society which is far from original Indian ideology. Now the question arises: what type of child development may be called holistic in the context of our modern Indian society. When we consider education in modern time we consider it in the context of some definite purpose, some definite aims related to utilitarian aspect of life. In our ancient age emphasis was on both aspects i.e. spiritual as well as utilitarian, but now it has moved towards utilitarian aspects of life only. Society itself is not appearing to have a clear vision about its appearance it has a dilemma between glorious past and westernization in our society. No doubt change is the law of nature, but this change is sweeping out our society towards west. The painful picture of present scenario is that we failed to fully absorb the values of science and are still guided in our conduct by superstition, tradition, dogmas etc. It is well said by **the great Indian philosopher Swami Vivakanand that superstition is the great enemy of life but bigotry is worse.** Here is the need of such teachers who can open the flood gate of new hopes, new vision and new future for our children through holistic education to take an equal share and make their contribution commensurate with the intelligence, ability and capacity of children in the renaissance of our country

- **Teacher Education**

Our aims and objectives are still not rational. There is a conflict between ancient and modern, such a situation cannot be able to give direction to the teachers of our new generation. For a long time, it has been indicated by various philosophers that the aim of education is all-round development of child. It is very easy to say but very difficult to explain the meaning of all round development. It is the matter for society to decide what type of development is expected in the child but the answer may not be given in the state of dilemma. Intellectual without spiritual values may not bring the glorious past of our country. How can we be glorious without those values which are really meaningful and source of energy of human being? Only being materialistic may not be the answer for aims of education. Educationist and thinkers have to find the way between the two, together with methodology for such education. It is an urgent and most needy area for educationists to make axiological aspects of teacher education crystal clear so that our society can make itself out of any dilemma and with open mindedness it has to decide how to make a

balance between past and present. Then only we can decide the way of our child development and for this, efforts have to be made for crystallization of axiological aspect of teachers' education.

Need of Axiological aspect of Teacher Education

Teachers are important force for such development. We cannot ignore this building block of society; especially their role as a mentor. The years of a child's life which he spends in school with his teachers have impact for whole life. Now if we really desire a proper value-based child development the axiological aspect of teacher education should be emphasized most during their training. The atmosphere of school and training colleges should be healthy; the relationship between teacher and taught should be positive and sweet. If a building block is healthy the whole society will automatically be healthy and would be capable to think how to reconstruct its structure with recombining utilitarian and spiritual values, giving a new hope to young generation. Here is the need to rethink and reconstruct our teachers training system according to our social change.

Education is undergoing constant changes under the effects of modernization. This phenomenon is reflected in teachers' education too.

Policy makers and educators in our country have to think how to reform aims of teachers' education for preparing their young teachers to more effectively cope with the challenges in the new era not only in materialistic aspect but spiritual too. So, there is an urgent need of a comprehensive framework for understanding the expected axiological aspect to adjust with rapid developments and advancing implications for innovations in teachers' education. Now the question arises: How teachers' education can be transformed from a traditional paradigm towards a new paradigm for value-based teachers' education? This is a challenge for educators that graduates from education should not be limited to be technicians or experts in certain areas but also be intelligent value-based leaders and citizens for development of the society in different areas.

Conclusion and Suggestion

Teachers should be trained in such an environment that their potentials can be maximized to facilitate enhancement of students' learning and values in an optimal way. Teaching is considered a process to initiate, facilitate, and sustain students' self- learning, self-exploration and self-actualization; therefore, teachers should play a role as a facilitator or mentor who supports students' learning. To teachers themselves, teaching is also a lifelong learning process involving continuous discovery, experimenting, self actualization, reflection, and professional development. Need is to make their training value-based not only through some content material but also through some practical sessional work, so that they can feel pleasure of spirituality during their training period and transfer it in their professional life in future.

The aims of teachers' education should be to develop teachers' logical, aesthetic and ethical powers as leaders and citizens who will creatively contribute to the formation of a society with multiple developments in technological, economical, social, political, cultural, and spiritual aspects. The rise of a spiritual society, driven by technology and communication developments will shape our children into intelligent people with a broad range of skill and values to apply to a competitive world. Researches on axiological aspects of teacher's education needs to be emphasized most in this direction.

References:

1. G. Ranjit Sharma (1987): Trends in Contemporary Indian Philosophy of Education (A Critical Evaluation), New Delhi Nirmal Publishers and distributors.
2. Gupta S.K. (2005): Education in Emerging India, Shipra Publication, Delhi.
3. Mathur S.S. (2009): Teacher in Emerging Indian Society, ed I, Agarwal Publication, Agra-2.
4. NCERT: Journal of Value Education, Vol.3, New Delhi.
5. Seetharamu, A.S. (1989): Philosophies of Education, New Delhi, Ashish Publishing House.
6. Sharma R.N. (1972): Indian Philosophy, New Delhi Orient Longman's Ltd.
7. Sethna, K.D. (1953): The Indian Spirit and the World future, Pondicherry Sri Aurobindo Ashram.
8. Saiyidan K.G.: The Humanist Tradition in India Educational Thought, Asia Publishing House, Mumbai.
9. Taneja, S (1980): Nature spirituality and science. Vikas Publishing House, pvt. Ltd, New Delhi.

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका

डॉ0 हवलदार सिंह यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय
एम.एम.पी.जी. कालेज, कालाकांकर, प्रतापगढ़

प्रस्तावना :

शिक्षा मानवीय विकास का आधार एवं सभ्यता तथा संस्कृति की संवाहक होती है। विश्व के सभी विकसित देशों की प्रगति का कारण वहाँ शिक्षा तकनीकि एवं प्रौद्योगिक विकास है। किसी भी देश के विकास और गुणवत्तापरक शिक्षा में अनिवार्य सम्बंध है। शिक्षा के गुणात्मक विकास के अभाव में प्रशासनिक, तकनीकी, बौद्धिक और सामाजिक प्रगति बाधित होने लगती है। वर्तमान में भारतवर्ष में राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा संस्थानों में सामर्थ्य से अधिक प्रवेश, आवश्यक संरचना के प्रभाव में भी शैक्षिक संस्थानों को मान्यता प्राप्त होने, अध्यापक, छात्र और कर्मचारी वर्ग के आन्दोलन, अनुपयुक्त पाठ्यक्रम और दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली, प्रभावहीन शिक्षक और शिक्षण प्रणाली, स्तरीय पाठ्य सामग्री की अनुपलब्धता तथा शिक्षण माध्यम की समस्या से माध्यमिक शिक्षा अपने सामाजिक सरोकरों से निरन्तर दूर होती जा रही है। मानव संसाधन की अकुशलता से विश्व परिदृश्य में शैक्षिक पहचान का संकट उत्पन्न होने लगा है। अतः आज शैक्षिक प्रशासकों और शिक्षाविदों की प्रमुख चिन्ता माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता निर्धारण है। उच्च शिक्षा के उन्नयन और संरक्षण के लिये नवाचारों के प्रयोग को अपरिहार्य माना जाने लगा है। मल्टी मीडिया एप्रोच, पर्सनलाइज्ड सिस्टम ऑफ इन्स्टीट्यूशन, कम्प्यूटर असिस्टैंट इनस्ट्रक्शन, सैटलाइट सम्प्रेषण, माइयूलर उपागम, रेडियोविजन, इन्टरनेट, ई–मेल, सी.डी. रोम, सीमूलेटेड शिक्षण की अनिवार्यता आदि माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता निर्धारण हेतु अनिवार्य हो गये है। अलग–अलग आवश्यकताओं और शिक्षण शैलियों से युक्त विशाल जनसंख्या को गुणवत्तापरक शिक्षा प्रदान करना एक चुनौती है, जिसका सामना ई–शिक्षण तकनीकी के माध्यम से ही सम्भव है। मुक्त शिक्षण, सुदूर शिक्षण संसाधनों और प्रौद्योगिकी के विकास के क्षेत्र में उपग्रह संचार, इन्टरनेट इलेक्ट्रॉनिकी से ही ज्ञान का संप्रेषण प्रभावी होता है। ई–शिक्षण तकनीक के माध्यम से किफायती रूप से अधिकांश छात्रों को लाभान्वित किया जा सकता है। तकनीकी प्रगति के इस युग में अध्यापकों को और अधिक कुशलता और सक्षमता प्रदान

कर उन्हें उपलब्ध तकनीकों का सर्वश्रेष्ठ उपयोग कर शिक्षण को प्रभावी एवं रूचिकर ढंग से प्रदान करने हेतु दक्ष करने की आवश्यकता है।

आज शिक्षा के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी ने अनिवार्य स्थान बना लिया है। जिससे विद्यार्थी अपनी रूचि और आवश्यकता के अनुसार ज्ञान प्राप्त कर सकता है। सूचना के अधिग्रहण से विद्यार्थियों में अनेक कौशल विकसित होते हैं। किसी विषय का अद्यतन ज्ञान, दूर देश में बैठे प्रबुद्ध विषय विशेषज्ञ से ज्ञान प्राप्त करना, तर्कपूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण, ग्रामीण या अर्द्धशहरी क्षेत्र का विद्यार्थी भी अत्यन्त कम पैसे व कम समय में ऑक्सफोर्ड या हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, लंदन स्कूल ऑफ इकनामिक्स जैसे देश विदेश के प्रतिष्ठित संस्थानों से ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसीलिये तकनीकी संस्थानों में सूचना प्रसारण के पर्याप्त बुनियादी ढांचे तैयार करना, इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम को सूचना विज्ञान पर आधारित बनाने के लिये हार्डवेयर सेक्टर में जनशक्ति का विकास, प्रौद्योगिकी पर निर्धारित शिक्षण वातावरण का प्रयोग, माड्यूलर लचीली प्रणाली के माध्यम से शिक्षा की निरन्तरता को बनाये रखने की आवश्यकता है। प्रबन्धन कुशलता में सुधार पारदर्शिता में वृद्धि और किफायत को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सूचना प्रौद्योगिकी में मानव संसाधन के विकास के लिये अनेक राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाये गये।

भारतवर्ष में संचार प्रौद्योगिकी :

मात्रा तथा गुणवत्ता के संदर्भ में देश की आवश्यकताएं इतनी विशाल है कि उच्च वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये केवल सरकारी धन पर्याप्त नहीं है। जनशक्ति के बाजार का वैश्वीकरण हो जाने के कारण प्रशिक्षित जनशक्ति की मांग केवल देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी बढ़ी है। अतः तकनीकी शिक्षा के विस्तार और प्रशिक्षित जनशक्ति के निर्माण के लिये सूचना एवं प्रौद्योगिकी में कम लागत की कम्प्यूटर प्रणाली तथा ओपन–सोर्स साफ्टवेयर, कैम्पस में तीव्र गति से काम करने वाले नेटवर्क, भरोसेमंद तथा किफायती कनेक्टिविटी, इंजीनियरी सूचना में प्रमुख विषयों का प्रारम्भ, सूचना प्रौद्योगिकी के पाठ्यक्रमों पर आधारित उपकरण का प्रयोग कैड या कैम टूल्स पर आधारित शिक्षा कार्यक्रम, सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित अनुप्रयक्त परियोजना, प्रबन्धन टूल्स, इंडिया इलेक्ट्रॉनिक डिजाइन ओटोमेशन टूल्स योजना, माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम्स पैकेजिंग, प्रौद्योगिकी के उभरते हुए क्षेत्रों में जनशक्ति विकास के लिये वर्चुअल सेंटर ऑफ एक्सीलेंस, उपयोगिता पर आधारित विस्तृत शिक्षा में सहयोग, उद्योगों के साथ पारस्परिकता को बढ़ावा तथा तकनीकी जनशक्ति, आंकड़ों के लिये नेटवर्क तैयार करना, प्रशासन विभाग

की सहयोगी सेवाओं के लिये कम्प्यूटरीकरण करना आदि नवीन कार्यक्रम को शामिल किया गया। उच्च शिक्षा में विस्तार और अध्यापन की गुणवत्ता के लिये आधुनिक तकनीकों, जैसे उपग्रह, संचार, इंटरनेट और इलेक्ट्रॉनिक के प्रयोग से अधिक से अधिक शिक्षा बोर्डो को एन. सी.ई.आर.टी. के सूचना तंत्र से जोड़ने, विज्ञान एवं तकनीकी तथा मानविकी और अन्य विषयों की पत्र–पत्रिकाओं को इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से उच्च शिक्षण संस्थानों को उपलब्ध कराना, शिक्षा को समर्पित उपग्रह से टेलीविजन और अन्य दूरसंचार माध्यमों के द्वारा उत्तम श्रेणी के अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने जैसे प्रयोग हो रहे हैं। शिक्षण और अनुसंधान की गुणवत्ता और उपयुक्तता को सुधारने के लिये पारम्परिक उपाधि के साथ उपयोगिता से संबंधित कार्यक्रमों का सूत्रपात करना, उत्कृष्टता की क्षमता से युक्त विद्यालयों को चिन्हित करना, राष्ट्रीय संस्थानों की स्थापना, शैक्षणिक कार्य निष्पादन, अनुसंधान कार्य निष्पादन और संचालन के लिये निर्धारित पैरामीटर्रों पर उनकी जांच करना, इन पैरामीटर्रों पर खरा उतरने वाले उच्च शिक्षण संस्थानों को प्रोत्साहन देना भी वर्तमान में प्रयुक्त उपयोगी कार्यप्रणाली है। इसके अतिरिक्त शिक्षा जगत में ई–शिक्षण को बढ़ावा देने के लिये सार्वजनिक व निजी क्षेत्र की भागीदारी, संस्थानों व उद्योगों के संबंधों, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को भी बढ़ावा दिया जा रहा है।

हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उच्च शिक्षा के परिदृश्य को विकसित करने हेतु काफी प्रयास किये गये। परन्तु आज भी उच्च शिक्षा का संख्यात्मक एवं गुणात्मक विकास विकसित राष्ट्रों की तुलना में काफी कम है। सन् 1995 में यूनेस्को द्वारा तैयार की गई उच्च शिक्षा के विकास व परिवर्तन सम्बन्धी नीति में इस बात पर बल दिया गया है कि उच्च शिक्षा के फलस्वरूप ही किसी राष्ट्र को सांस्कृतिक विकास व आर्थिक प्रतिस्पर्धा की शक्ति प्राप्त होती है। हम सभी इस तथ्य से सहमत होंगे कि जिन देशों में उच्च शिक्षा को महत्व प्रदान किया गया, वे राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध तथा विकसित है। भारत इन विकसित राष्ट्रों से तभी प्रतिस्पर्धा कर सकता है जब हमारे देश में भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र को गुणात्मक तथा संख्यात्मक दृष्टि से व्यापक स्तर पर विकसित करने के प्रयास तीव्रता से किया जाये।

यूनेस्को द्वारा गठित अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ''लर्निंग दि ट्रेजर विदिन'' ने 21वीं सदी में शिक्षा के प्रारूप पर प्रकाश डालते हुये कहा है ''भविष्य के लिये शिक्षा के वर्तमान स्वरूप में आवश्यक संशोधन की आवश्यकता है तथा इस कार्य के लिय शिक्षा की वर्तमान नीतियों तथा विधियों में परिवर्तन आवश्यक है। विज्ञान तथा तकनीकी इस कार्य में हमारी

मदद कर सकते हैं तथा इनके माध्यम से हम अपनी शिक्षा प्रणाली को 21वीं शताब्दी के लिये तैयार कर सकते हैं।'' आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा की पहुँच विश्व के प्रत्येक नागरिक तक हो तथा इस कार्य में सरलता एवं सुगमता हो। सूचना तथा प्रौद्योगिकी के माध्यम से जो क्रान्ति उत्पन्न हुई है उस क्रान्ति ने दूरस्थ बैठे व्यक्तियों को किसी भी विषय पर विश्व की उच्चतम गुणवत्ता युक्त शिक्षा ग्रहण करने के लिये नये आयामों को एक नई दिशा प्रदान की है।

वर्तमान समय में भारत जैसे देश में उच्च शिक्षा के लिये जो सुविधायें उपलब्ध हैं उनके आधार पर शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करना कठिन प्रतीत होता है। इस कार्य में सूचना प्रौद्योगिकी हमारी सहायता कर सकता है। यूनेस्को ने सूचना प्रौद्योगिकी को इस प्रकार परिभाषित किया है ''वैज्ञानिक, तकनीकी तथा इंजीनियरी जैसी विधायें तथा व्यवस्थापन तकनीक का प्रयोग सूचना को निष्पादित संसाधित तथा प्रयोग करने के लिये कम्प्यूटर इत्यादि का प्रयोग करते हुये, मानव तथा मशीन के बीच होने वाली क्रिया को जो कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृति पहलुओं से जुड़ी हो, जब इलेक्ट्रानिक आयाम प्रदान किया जाता है तब स एकजुटता को ही सूचना प्रौद्योगिकी का नाम दिया जाता है''। शिक्षा के क्षेत्र में रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेलीफोन, टेलीविजन, सेल्युलर फोन, कम्प्यूटर, इंटरनेट, प्रिंटर, मल्टीमीडिया इत्यादि ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। आज इंटरनेट विश्व भर में करोड़ों उपयोगकर्ताओं को एक दूसरे से जोड़ता है। ऑन लाइन सुविधा ने शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के नये परिदृश्य खोल दिये हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नित्य हो रहे आविष्कारों ने ज्ञान के भंडार में अभूतपूर्व वृद्धि की है। इस भंडार को नई पीढ़ी तक कम से कम समय एवं खर्च में प्रभावी ढंग से पहुँचाकर सीखने वाले की आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी कर सकते हैं।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की आवश्यकता :

इक्कीसवीं शताब्दी और कम्प्यूटर के इस युग में भावी पीढ़ी जो राष्ट्र की आधारशिला है, को शिक्षित करने वाले शिक्षकों में ही शिक्षा तकनीकी के व्यावहारिक ज्ञान की कमी होने के कारण भी उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर सवाल उठ खड़ा होता है। अतः वर्तमान परिदृश्य में अपनी भूमिका का सही निर्वहन करने योग्य शिक्षक के लिये आवश्यक है कि शिक्षक को स्वयं मानवीय गुणों में सम्पन्न तकनीकी कौशलों में सिद्धहस्त व वर्तमान समस्याओं के प्रति जागरूक हो।

जान आर0 एलेट ने कहा है कि ''हमारा युग एक महान व भयंकर उथल पुथल का युग है। हम आरम्भ से अन्त तक पहुँच गये हैं। हम एक नवीन संसार में प्रवेश कर रहे हैं। भविष्य का एक ऐसा संसार, जो आज के संसार से एकदम भिन्न होगा। कम्प्यूटर प्रधान नवीन समाज होने वाले मानव व्यवहार के महान परिवर्तन के विषय में वही विचारक कुछ बता सकते हैं जो पचास वर्ष पश्चात् की भावी दुनिया के विषय में विचार करने की क्षमता रखते हों।''

विगत दशकों में समस्त विश्व में नवीन युग का सूत्रपात हुआ है और इसका एकमात्र कारण सूचना प्रौद्योगिकी के जन्म के साथ विश्व का आकार प्रतिदिन संकुचित होता जाना है। नागरिक की परिकल्पना का स्थान ''विश्व नागरिक'' ने लिया है। वर्तमान विश्व सूचना क्रान्ति के परिवर्तनों से गुजर रहा है। 1970 के मध्य से जो परिवर्तन औद्योगिक क्रान्ति के संदर्भ में चल रहे हैं, उनके चलते यह विराट संसार एक ''वैश्विक गाँव'' के रूप में बदल गया है और विश्व समुदाय अब ''सूर्य समुदाय'' की तरफ अग्रसर हो रहा है। कम्प्यूटर, ई–मेल, ई–कामर्स, उद्यम् संसाधन आयोजन (आई0आर0पी0), भौगोलिक सूचना तंत्र (जी0आई0एस0), इलेक्ट्रिक डेटा इंटरचेंज (ई0डी0आई0) तथा विश्वव्यापी वेबसाइटों के उद्‌भव के साथ समस्त विश्व निरन्तर प्रगति के पथ पर है।

कम्प्यूटर ई–मेल और विश्वव्यापी वेब के संकलन से इंटरनेट निर्मित हुआ। यह छोटे–छोटे नेटवर्को व भूमण्डल में फैली अन्य सूचनाओं का संगठन है। 135 देशों में इसके 30,000 से भी अधिक नेटवर्क हैं। सन् 1990 तक 5,00,000 कम्प्यूटर्स इससे जुड़े थे। 1998 तक इंटरनेट का उपयोग करने वालों की संख्या 50 करोड़ तक हो गई। वर्ष 2003 के अन्त तक यह संख्या 300 करोड़ तक पहुँच चुकी है। वर्तमान में यहसंख्या 600 करोड़ के पार पहुँच चुकी है।

संचार की इलेक्ट्रानिक पद्धतियों के कारण शिक्षण संस्थाओं का भी स्वरूप बदल गया है। आने वाले समय में उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रत्येक छात्र के लिये एक कम्प्यूटर टर्मिनल होगा। छात्र पुस्तकालय में जाये बिना ही मनोवांछित पुस्तकें कम्प्यूटर स्क्रीन पर पढ़ सकेंगे। शिक्षण संस्थाओं को भी एक दूसरे से जोड़ दिया जायेगा। यही नहीं छात्र कालेज गए बगैर अपने शिक्षक को देख सकेंगे, उनका व्याख्यान सुन सकेंगे और उनसे सवाल जवाब कर सकेंगे। फ्रांस की एक नवीनतम डिजिटल लाइब्रेरी में डिजिटल स्वरूप में तीन लाख से अधिक दस्तावेज मौजूद हैं। ब्रिटेन ने भी अपने सदस्यों को कम्प्यूटर टर्मिनल्स के जरिये इलेक्ट्रानिक पुस्तकें उपलब्ध कराने की योजना बनाई है। इसे आन लाइन पब्लिक एक्सैस

केटलाग का नाम दिया है। इससे शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य सम्प्रेषण की बाधा समाप्त कर दी है।

निष्कर्ष :

विवेचन से स्पष्ट है कि नित नवीन परिवर्तित होते समाज में सूचना एवं प्रौद्योगिकी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यदि छात्रों को 21वीं सदी की माँग के अनुरूप तैयार करना है तो इस संदर्भ में उनमें सूचना एवं प्रौद्योगिकी के नवीनतम संसाधनों की मूलभूत जानकारी और उनके प्रयोग का कौशल विकसित करना होगा, जिससे वैश्विक परिवेश में छात्र नई सदी की माँग के अनुरूप तैयार हो सकें। वर्तमान समय में छात्रों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से देखी गयी घटनाओं का अधिक प्रभाव पड़ता है। उच्च शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने में एवं शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने में सूचना प्रौद्योगिकी की निम्नलिखित उपयोगिताएँ हो सकती हैं।

1. शिक्षण प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली तथा सार्थक बनाया जा सकता है।
2. पत्राचार पाठ्यवस्तु को अभिक्रमित अनुदेशन का तथा रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेपरिकार्डर के प्रयोग से अधिक प्रभावशाली बनाकर शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाया जा सकता है।
3. भारत में अधिकांश विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षण संस्थानों के लिये भी व्यक्तिगत परीक्षा की सुविधायें उपलध करा दी हैं। उच्च शिक्षा के स्तर को बनाए रखने के लिये शिक्षा तकनीकी महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है जैसे अभिक्रमित अनुदेशन, रेडियो आदि।
4. अध्यापक प्रशिक्षण संस्थायें प्रभावशाली शिक्षक तैयार नहीं कर पा रही है। इसके लिये आवश्यक है कि प्रशिक्षण की नवीन प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाये। शिक्षण कौशल के विकास के लिये पृष्ठ पोषण की उक्तियों (Mechanism of feed back for the modification of teacher behaviour) का प्रयोग किया जा सकता है जैसे– सूक्ष्म शिक्षण, अनुकरणीय प्रशिक्षण, प्रशिक्षण समूह आदि का प्रयोग करना।
5. शिक्षा तकनीकी के फलस्वरूप एक प्रभावशाली शिक्षक के ज्ञान और कौशल का सभी लाभ उठा सकते हैं, चाहे वह नगर में रहता हो या गाँव में अथवा पहाड़ों पर रहता हो। उसके अभिभाषण को रेडियो तथा दूरदर्शन पर देश प्रत्येक भाग में पहुँचाया जा सकता है।
6. हार्डवेयर के उपयोग से शिक्षक तथा विद्वान के विचारों को मौलिक रूप से संचित किया जा सकता है। उसके बाद भी समाज उसके विचारों को मौलिक रूप से सुन सकता है तथा देख सकता है।

7. शिक्षा तकनीकी के प्रयोग की सहायता से शिक्षण के स्वरूप को समझाया जा सकता है। शिक्षण के नये प्रारूप (Teaching Models) विकसित किये जा सकते हैं।
8. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जो शोध कार्य किये जा रहे हैं, उनका उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर कोई प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता है। परन्तु शैक्षिक तकनीकी शोध कार्य के लिये शिक्षा में नवीन प्रयोगों के लिये अवसर प्रदान करती है, जिनका प्रभाव शिक्षण प्रक्रिया पर प्रत्यक्ष दिखाई देता है।
9. शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या व्यक्ति भिन्नता की रही है, जिसका समाधान शिक्षा तकनीकी ने किया है। अभिक्रमित अनुदेशन (Programmed Instruction) इनका प्रमुख उदाहरण है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सूचना एवं प्रौद्योगिकी के प्रयोग करने से शिक्षण में कुशलता आती है साथ ही शिक्षण और अधिक प्रभावशाली बन जाता है। दूसरे शब्दों में जिन सूक्ष्म बातों तथा कठिन भागों को बालक चाक और टाक (Chalk and Talk) की सहायता से नहीं समझ सकते उन्हें वे सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग से सफलतापूर्वक समझ जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इसकी सहायता से शुष्क तथा अरुचिकर विषयों अथवा उपविषयों को अन्य प्रविधियों की अपेक्षा अधिक सरल, रोचक और स्पष्ट बनाया जा सकता है।

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि उच्च शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में सूचना प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण योगदान है।

संदर्भ सूचीः–

1. माथुर, एस0एस0, शैक्षिक तकनीकी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2006
2. शर्मा, ए0आर0, एजूकेशनल टेक्नोलॉजी, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2006
3. सिंह, राम पाल, शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
4. अग्रवाल, जे0सी0, शैक्षिक तकनीकी प्रबन्धन एवं मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2006
5. कुलश्रेष्ठ, एस0पी0, शैक्षिक तकनीकी के मूलाधार, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2006
6. गुप्ता, एस0पी0, भारतीय शिक्षा इतिहास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1996

Nav Jyoti, Vol. 8, No. 17, July-Dec. 2020 ISSN : 2249-7331

महिला सशक्तिकरण की आड़ में कहीं पिस तो नही रहा पुरूष (महिला सुरक्षा कानूनों के विशेष सन्दर्भ में)

जया तिवारी
शोध छात्रा,समाजशास्त्र विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

एक समय था जब हमारे समाज में महिला को अबला, असहाय, करूणा व त्याग की मूर्ति समझा जाता था। समय बदला, लोगों का रहन–सहन बदला परन्तु महिला के संबंध में हमारे समाज की धारणा वही रही। आधुनिक अर्थात् शिक्षित, आत्म–निर्भर, जागरूक महिला आज भी हमारी मानसिकता न बदले जाने के कारण वही सदियों पुरानी, अवला, असहाय, करूणा व त्याग की मूर्ति समझी जाती है। इसी कारण महिलाओं के साथ सहानुभूति हमारे समाज की ही नहीं बल्कि हमारे कानून की भी रही है। इसी सहानुभूति के आधार पर महिला सशक्तिकरण के लिए संविधान ने महिलाओं को अधिकार व कानूनी शक्तियाँ दी है। जिससे महिलाएँ इन कानूनों का प्रयोग कर अपने अधिकारों को पाने व अपनी रक्षा हेतु अपने उपर हो रही अत्याचारों व शोषण के विरूद्ध उचित कानूनी कार्यवाही कर अपने आप को संरक्षित कर सके। लेकिन जैसा कि हर कनून के साथ होता रहा है, इनके अन्दर की खामियाँ भी सामने आई और उसका दुरूपयोग शुरू हो गया। वर्तमान समय में विभिन्न समाचार पत्र पत्रिकाओं द्वारा प्राप्त सूचनाओं के अनुसार आज की आधुनिक महिलाएँ कानून द्वारा प्राप्त अपने विशेषाधिकारों का दुरूपयोग करके अपने पति के साथ–साथ परिवार वालों को भी अनायास प्रताड़ित करती है।

इसमे कोई दो राय नहीं की भारत में महिलाओं पर पुरूषों द्वारा काफी समय से अत्याचार हुये हैं और कमोवेश अभी भी हो रहें है। इसलिए इन्हें कानूनी सुरक्षा मिलनी चाहिए लेकिन हमें यह भी नही भूलना चाहिए कि पुरूष भी इसी समाज का अंग है और सभी पुरूष अपराधी नही हैं। समस्या यह है कि हमने अपराध को भी महिला–पुरूष के खाँचे में बॉट दिया है और उसी आधार पर कानून बना बैठे हैं। हमें समझना होगा कि अपराधी सिर्फ अपराधी होता है। सामाजिक विधानों ने पुरूषों को निरंकुश अधिकार देकर महिलाओं के प्रति अत्याचारी बना दिया था लेकिन इसका उत्तर यह तो नहीं कि कानूनी विधानों के द्वारा स्त्रियों को भी निरंकुश शक्ति प्रदान करके पुरूषों के प्रति अत्याचारी बना दिया। सामाजिक विधानों ने पितृसत्ता की स्थापाना की जिसके दुष्परिणाम हम आज तक भुगत रहें हैं बावजूद इसके मातृसत्ता की नींव रखने में लगें है। आज महिला सामाजिक सुरक्षा से जुड़े भारतीय कानून के क्रियान्वयन के निष्पक्षता पर प्रश्नचिन्ह लग गया है। दहेज निरोधी कानून, घरेलू हिंसा, दुष्कर्म, यौन उत्पीड़न, कार्यस्थलों पर प्रताड़ना और पोक्सों जैसे कानूनों का बड़े पैमाने पर पुरूषों के खिलाफ दुरूपयोग किया जा रहा है और बीना प्रमाण के आधार पर **'मी टू' (Me Too)** जैसे आरोपों का फैशन चल पड़ा है। आज महिला सशक्तिकरण, पुरूष विरोध का पर्याय बनता जा रहा है अर्थात् आँख मूँदकर पुरूष का विरोध अन्धकारमयी गलियों से गुजरते हुए **'यौन मुक्ति'** तक जा पहुँचा है। कही न कहीं बदले की भावना का स्वरूप लेता यह आन्दोलन मानवीय, सामाजिक प्रवृत्तियों और लोक पर प्रश्न चिन्ह उठाता है।

बेशक आज यदि स्त्रियों के उत्पीड़न, घरेलू, हिंसा, बालात्कार, दहेज, आत्महत्या व छेड़खानी आदि की घटनाएँ दिन–प्रतिदिन बढ़ रही हैं तो इसके साथ–साथ पुरूषों को भी झुठे मुकदमें इत्यादि के माध्यम से प्रताड़ित किया जा रहा है। दरअसल आज महिला हितैषी कानूनों के तहत लाखों लोग जेलों में बन्द है। कई बार कुछ सालों बाद जब वे निरपराध साबित होते हैं, जेल से छुटते हैं तब भी उन लोगों को कोई सजा नहीं मिलती जिन्होंने उन पर झुठे आरोप लगाए। इसलिए लिंग भेदी कानूनों में सुधार होने चाहिए जो

भी झुठे आरोप लगाएँ, या जो अपराधी हो, चाहें स्त्री हो या पुरूष उसे सजा मिले यह लेख इसी दिशा में किया जाने वाला एक प्रयास है।

महिला सशक्तिकरण ए**क 'बहुआयामी'** प्रक्रिया है। यह शक्ति संबंधों को चुनौती देती है। यह पुरूष सम्प्रभुता के स्थान पर महिला सम्प्रभुता स्थापित करने का प्रयास नहीं है, बल्कि समानता के आधार पर सामन्जस्यपूर्ण भागीदारी की माँग है। सत्ता किसी की हो उसमे कुछ न कुछ खामियॉ अवश्य होती है। हमें सत्तात्मक नहीं **'समतामूलक समाज'** की स्थापना की दिशा में कदम उठाने होंगे और इसके लिए आवश्यक है कि महिला–पुरूष के बीच हर स्तर पर समानता लाई जाये।

यह लेख (अध्ययन) महिलाओं की रक्षा के लिए बनाये गये कानूनों के खिलाफ नहीं है वरन् उसके हो रहे दुरूपयोग से समाज को एवं विधि निर्माताओं को सचेत करने का प्रयास है, ताकि सामाजिक समरसता बनी रहे। आरोपों की सही जाँच की जानी चाहिए और दोषी को सजा मिलनी चाहिए। जाँच निष्पक्ष सबूतों के आधार पर होनी चाहिए। ज्ञात हो कि कानून द्वारा दण्ड का प्रावधान अपराधी को नही वरन् उसकी अपराधिक प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए किया गया है ऐसे में निरपराध व्यक्ति को सजा निश्चत रूप से निन्दनीय एवं मानवीय मूल्यों के विरूद्ध है। प्रकृति ने समाज में संतुलन के लिए महिला–पुरूष की संरचना की जिसके माध्यम से परिवार, समाज, सभ्यता और संस्कृति, पुष्पित एवं पल्लवित होते हैं। वर्तमान समय की महती समस्या यह है कि किसी एक वर्ग (महिला या पुरूष) को विशेष महत्व देकर कहीं इस संतुलन को समाप्त न कर दिया जाए। कोई भी किसी का शोषण न करे और न ही अधिकारों के माध्यम से अपना वर्चस्व स्थापित करे। दोनों के शक्तियों में संतुलन आवश्यक है ताकि परिवार व्यवस्था बनी रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

- ❖ शर्मा, क्षमा (2002) : स्त्रीवादी विमर्श : समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- ❖ खेतान, प्रभा (2002) : स्त्री उपेक्षिता, हिन्द पाकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
- ❖ बाजपेयी, सुमन (05/06/2014) : पुरूष पर अत्याचार, :https://www.Sarita.in./social/transgression-male,
- ❖ शर्मा, क्षमा : वक्त की मॉग है पुरूष आयोग, दैनिक जागरण, (उ0प्र)
- ❖ डा0 सिंह, अरूण प्रताप (2020) : लोक साहित्य में स्त्री, समाजिकता और सांस्कृतिकता, इण्टरनेशनल रिसर्च जनरल
- ❖ मिल, जे.एस. (1869) : द सब्जेक्सन ऑफ वीमेन (स्त्रियों की पराधीनता), राजकमल प्रकाशन क्राफ्ट, मेरी वोल्सटन (2003) : (अनुवादिका : मीनाक्षी) स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन (नारीवादी विमर्श की प्रथम सैद्धान्तिक कृति), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

.....